UNIVERSAL LIBRARY
OU_182571
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82/353P Accession No. G.H. 219

Author शास्त्री, चतुरसेन।

Title पगध्वनि। 1952.

This book should be returned on or before the date last marked below

पग-ध्वनि

राष्ट्र-पिता गांधी के पुनीत आदर्शों पर
आधारित अनुपम नाटक

लेखक
आचार्य चतुरसेन शास्त्री

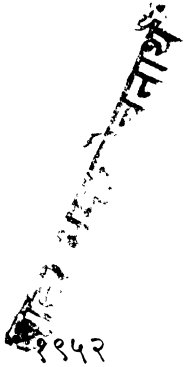

१९५२
आत्माराम एण्ड संस
पुस्तक-प्रकाशक तथा विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली ६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

Checked 1969

मूल्य डेढ़ रुपया

Checked 1969

मुद्रक
क्रानिकल प्रेस,
मोरी गेट, दिल्ली ६

श्री डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद
के लिए

दो शब्द

यह छोटी-सी नाटिका मैंने राष्ट्रपति डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद की प्रेरणा से लिखी है। ८ मई के अपरान्ह में मैंने उनसे मुलाकात की और साहित्य की प्रगति तथा साहित्य के द्वारा भारतीय जन-जन को शान्तनिष्ठ बनाये रखने के विधि-विधानों पर विचार-परामर्श हुआ। मेरा कहना था कि भावी भारत को व्यवस्थित करने में साहित्यकार ही एक-मात्र सहायक होगा—राजनीतिज्ञ नहीं। राष्ट्रपति से इस भेंट का मेरा उद्देश्य यह उलाहना देना भी था कि तथा-कथित भारतीय गणतन्त्रीय सरकार ने साहित्य-परिजनों का एक-बारगी ही त्यागन कर दिया है और वह भारत को पाश्चात्य राजनीति के ध्वस्त मार्ग पर घसीटे लिये जा रही है। सैंतालीस मिनट की लम्बी बातचीत के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि साहित्यजनों को गांधी जी के सत्य और अहिंसा के तत्त्वों को अपनी साहित्य-भावना में आत्मसात् करना चाहिए। राष्ट्रपति ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं इस प्रकार के साहित्य की रचना में सक्रिय भाग लूँ और अन्य साहित्य-परिजनों को भी प्रेरित करूँ। मैंने यह छोटी सी नाटिका लिख-कर इस दिशा में स्वयं ही पहला कदम उठाया है।

सब लोग यह बात जानते हैं फिर भी मैं कहे देता हूँ—कि मैं न तो गांधी जी का भक्त हूँ और न कांग्रेस का ही आदमी हूँ। गांधी-सम्प्रदाय से भी मेरा कुछ वास्ता नहीं है। अतः मेरी यह रचना इन सब वासना और भावनाओं से परे शुद्ध साहित्यिक वस्तु है। गांधी जी को मैं प्यार अवश्य करता रहा हूँ। जब तक वे रहे तब तक भी, और उसके

बाद अधिकाधिक। मैं न कभी उनसे मिला और न ही उन से कभी कोई सम्पर्क रखा। मेरी इस रचना में वह प्यार-ही-प्यार है। उस प्यार के साथ कुछ आँसू भी हैं, जो प्रिय-वियोग से आप ही उमड़ आते हैं।

डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति तो हैं ही—हमारे साहित्य-परिजन भी हैं। साथ ही वे परम साधु हैं। ऐसे-कि उन पर दया भी आती है और प्यार भी उमड़ता है। इसी से मैं उनसे मिला। यों मैं इस स्वदशी सरकार से खुश नहीं हूँ। यह सरकार हम साहित्यकारों का कोई भला नहीं कर सकती। व्यक्तिगत सम्पर्कों का हम कोई मूल्य नहीं समझते, दिन-दिन हम उससे और वह हमसे दूर होती जा रही है। हम इस राज्य में प्रतिष्ठित नागरिक नहीं हैं। प्रतिष्ठित नागरिक कदाचित् वे कदाचार फैलाने वाली फिल्म-तारिकाएँ हैं, जिनके साथ खड़े होकर राष्ट्रपति फोटो खिचवाते हैं, या वे मिनिस्टर, जिनके घर नित्य दिन में ईद और रात को दिवाली मनाई जाती है। और जिन्हें अपने विभागों के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान और दायित्व नहीं। अथवा वे घूसखोर और चोरबाजारी करने वाले उठाईगीर, जो आए दिन सरकारी दावतों में राष्ट्रपति-भवन की शोभा बढ़ाते हैं। हम लोग तो सड़क के एक किनारे खड़े होकर उनकी बड़ी-बड़ी मोटरों को आते-जाते देखकर अपनी आँखें धन्य कर सकते हैं—यदि पुलिस के धक्के खाने की जोखम बर्दाश्त कर सकें तो।

इस नाटिका में मैंने सर्वथा नई पद्धति का प्रयोग किया है। नाटकों की पुरानी सब परम्पराओं का उल्लंघन किया है। एक अंक में केवल एक दृश्य है। दृश्यों का परस्पर सम्पर्क नहीं है, नाटिका में कोई कथानक भी नहीं है। केवल भावना के रेखाचित्र हैं। भूमि में केवल प्यार की पीड़ा है, प्रस्तावना में पूजा है, प्रथम अंक में गांधी-दर्शन, दूसरे में गांधी-भावना, तीसरे में गांधी-प्रभाव, चौथे में गांधी-जीवन और पाँचवें में विरोध-निराकरण और छठे में गांधी-आदर्श है। देश-काल से अंक परस्पर सम्बन्धित नहीं हैं।

नाटिका में कुछ गहरे तत्त्व हैं। उनका सम्बन्ध गांधी-दर्शन से है। गांधी-दर्शन, धर्म और राजनीति के कुछ सम्बन्धों पर आधारित है। इसका प्रकट रूप 'सत्य और अहिंसा' है। इसी से मैं गांधी जी की विकास-वासना और सत्य-अहिंसा की रूप-रेखा की यहाँ थोड़ी विवेचना करूँगा।

गांधी जी के 'सत्याग्रह'-सिद्धान्त की आधार शिला पाश्चात्य है। रशियन ऋषि टाल्स्टाय ने अपनी पुस्तक में सत्याग्रह-कल्पना की एक विस्तृत योजना लिखी थी। गांधी जी ने उसे व्यावहारिक रूप दिया—कहना चाहिए, राजनीतिक लड़ाई में गांधी जी ने रूस से पहले सत्याग्रह-प्रयोग किया। इस प्रयोग में एक सांस्कृतिक तत्त्व पाश्चात्य था दूसरा भारतीय। पाश्चात्य तत्त्व 'देश-भक्ति' था और भारतीय तत्त्व 'सत्य-अहिंसा'।

पहले हम 'देश-भक्ति' की विवेचना करेंगे। देश-भक्ति भारत में अंग्रेजों के साथ-साथ आई। इसे हम पाश्चात्यों का देवता कह सकते हैं। वैदिक काल में आर्यों के देवता इन्द्र थे, अशोक काल में बुद्ध। शकों के काल में महादेव और गुप्तों के काल में वासुदेव। उसी प्रकार अंग्रेजी राज्य में भारत का सबसे प्रधान देवता हुआ 'देश'। ज्यों-ज्यों भारत में सत्तावन के विद्रोह के बाद अंग्रेजी अमल जमकर बैठता गया, यह नया देवता हिन्दू समाज के मध्यवर्ग को सर्वप्रिय होता गया। मुसलमानों ने हिन्दुओं पर अल्लामियाँ को लादने के लिए बड़े-बड़े ज़ोर-ज़ुल्म किये—परन्तु हिन्दुओं ने उस देवता को राजी-खुशी स्वीकार नहीं किया। पर इस पाश्चात्य देव को हिन्दू-समाज के सब अंग—ब्राह्मण, आर्य, जैन, सिख—आदि सर्वोपरि देवता समझते चले गए। कहना चाहता हूँ कि इस देवता पर सत्तावन के विद्रोह के बाद से अब तक सभ्य युग में जितनी नर-बलि दी गई—उतनी शायद ही किसी देवता को जंगली युग में दी गई होगी। इसलिए पाश्चात्य संस्कृति पर भी यहाँ दो शब्द कहने पड़े जो इस 'देश-देवता' की आधार-शिला है।

मिस्र और बैबिलोनिया में हजारों वर्षों के पुराने साम्राज्यों का जब नाश हो गया तब ग्रीक लोगों का उदय हुआ। संसार के इतिहास में उन्होंने ही सबसे प्रथम यह सिद्ध कर दिखाया कि साधारण जनता राजा की सहायता के बिना ही राज्य कर सकती है। यद्यपि उनमें गुलामी की प्रथा थी परन्तु मध्यम श्रेणी के सामान्य जनों को अपना नेता चुनने का उन्होंने अधिकार दिया। बुद्ध-काल में भारत में भी मल्ल-शाक्य-वंशी आदि गणतन्त्र थे। परन्तु उनमें मध्यम वर्ग के लोगों को राज्य-शासन के अधिकार नहीं थे। एक अथवा अनेक गाँवों के सर्वाधिकारी जमीदार—जो राजा कहाते थे—एकत्रित होकर अपने में से किसी एक को महाराज चुनते और उसके अनुरोध से राज्य चलाते थे। पर ग्रीक में सब मध्यमवर्गीय नागरिकों को अपना नेता चुनने का अधिकार था। प्राचीन ग्रीक किस प्रकार जनतन्त्र का संचालन करते थे। इस पर प्लेटो की प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' में बहुत-कुछ प्रकाश डाला गया है।

ग्रीक लोग केवल प्रजातन्त्री राज्यों ही की स्थापना में अग्रसर न थे। कला-कौशल और शौर्य तथा दर्शन एवं विज्ञान में भी उनकी गति संसार की सब जातियों से बढ़ी-चढ़ी थी। कुछ काल बाद उनके अस्त होने पर रोमन लोगों का उदय हुआ। पर वे ग्रीकों के समान बुद्धिमान न थे। ग्रीकों को उन्होंने पकड़कर दास बनाया, पर ये दास ही उनके गुरु बन गए। रोमन लोगों ने कला, कौशल, साहित्य आदि जो कुछ सीखा—उन्हीं ग्रीक दासों से। रोमन लोगों ने भूमध्य सागर पर प्रभुत्व स्थापन करने के लिए बड़े-बड़े युद्ध किये और उनके राज्य का बड़ा विस्तार हुआ। परन्तु रोम में प्रजातंत्र-प्रणाली अवश्य थी, पर बाहर के देशों पर उनका निरंकुश शासन था। इस निरंकुश-शाही का ही यह परिणाम हुआ कि खास रोम ही में साम्राज्यशाही की स्थापना हो गई।

रोमन साम्राज्य नष्ट होने पर ईसाई धर्म का उदय हुआ, पर

रोमन साम्राज्य का प्रभाव यूरोप पर बना ही रहा। रोमन साम्राज्य का नेता पोप बन गया, और उस मध्य युग में पोप की तूती बोलती रही। इसी समय मंगोलों ने और फिर तुर्कों ने यूरोप को रौंदना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ में तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे सारा यूरोप ही मुसलमान बन जायगा। परन्तु यूरोप मे तब तक अनेक सम्पन्न नगर बस चुके थे, और उनके व्यापार बहुत बढ़ गए थे, उन्हीं से यूरोप का भीतरी सुधार होता चला गया। कुस्तुनतुनियाँ उन दिनों यूरोप के व्यापार का मध्यमार्ग था। पर अभी तक उन्हे चीन और भारत का कुछ ज्ञान न था। धीरे-धीरे पोर्तुगीज, डच लोगों की साहसिक यात्राओं तथा युद्धों ने उन्हें भारत, चीन और अमेरिका से परिचित कराया। इन जातियों के बाद भारत में फ्रेञ्च और अंग्रेज आए और काफी संघर्ष के बाद—प्लासी के युद्ध करने पर भारत म उनकी जड़ जम गई। यह ई० स० १७५७ की बात है। आज इस राज्य का और कल उस राज्य का पक्ष लेकर उन्होने सारे भारतवर्ष पर अधिकार जमा लिया। पर, देसी राज्यों को वह अधिकार मे न ले सके। यदि अंग्रेज़ इन देशी राज्यों को भी तब अपने अधिकार मे ले लेते तो भारत का बहुत भला होता। परन्तु लार्ड डलहौजी के ज़माने मे लोग यही समझते थ कि ये देशी राज्य हिन्दुस्तान की संस्कृति है। इसी कारण सन् सत्तावन में भारतीय सैनिक इन अधमरे राजाओं के राज्याधिकार के लिए लड़ पड़े। इसका फल यह हुआ कि अंग्रेजों ने इन मुर्दार राजाओं को उसी अधमरी अवस्था में बनाए रखा, और सन् १८५८ में रानी विक्टोरिया की घोषणा के बाद ये सब राजा लोग भी ब्रिटिश शासन की गाड़ी में जोत दिए गए। इनकी स्थिति ऐसी रही कि वे अपनी प्रजा पर तो मनमानी स्वेच्छाचारिता कर सकते थे, पर अंग्रेज़ों के विरुद्ध जरा भी सिर उठाने पर उन्हें कुचल दिया जाता था, और उनकी छाती पर रेजाडेण्ट का मूसल इस काम के लिए

सदैव तैयार रहता था।

विचारने की बात यह है कि पोर्चुगीज, डच, फ्रेञ्च और अंग्रेज इन चार यूरोपियन जातियों ने भारत पर अधिकार जमाने का यत्न किया, पर विजयी अंग्रेज ही हुए—इसका कारण वह औद्योगिक क्रांति थी, जो पन्द्रहवीं शताब्दी में सभी यूरोपियन देशों मे आरम्भ हो गई थी और अंग्रेज उसमें सबसे बढ़ गए थे। इंग्लैंड की सरकारों और मध्यम वर्ग के लोगों ने इससे बहुत पहले ही राजा पर अपने अधिकार 'मागना-कर्टा' द्वारा प्राप्त कर लिए थे। सत्रहवीं शताब्दी में जब राजा चार्ल्स ने इन अधिकारों में हस्तक्षेप करना चाहा तो अंग्रेजों ने अपने इस राजा का सिर काट लिया। इसके बाद इंग्लैण्ड के राजा के अधिकार कम ही होते गए, पर चतुर अंग्रेजों को प्रजातंत्र की स्थापना समचित प्रतीत न हुई, उन्हें विजित प्रदेशों और उपनिवेशों पर स्वेच्छाधिकारी शासन के लिए एक राजा की आवश्यकता थी। बिना राज-संस्था के वे भारत पर भी अपना अबाध शासन कायम नहीं रख सकते थे। जब कभी पार्लियामेण्ट ग़लती करती—झट उससे बच निकलने के लिए राजा से ढाल का काम लिया जाता था। लार्ड कर्जन ने जब हिन्दुओं का महत्त्व घटाने के लिए बंग-भंग किया तो सारे ही भारत में आग लग गई। अंग्रेजों ने दमन करने का अवसर न देखा—यूरोप मे युद्धाग्नि सुलग रही थी, और युद्ध-आरम्भ होने के पहले ही भारत के क्षोभ को दूर करना श्रेयस्कर था इसलिए जार्ज पंचम को भारत भेजकर बंग-भंग रद्द करा दिया। राजा का यह अच्छे-से-अच्छा कूटनीतिक उपयोग था।

पुर्तगाल और स्पेन पोप के फन्दे में फँसे रहकर धर्मान्ध बन गए, हालेण्ड बहुत छोटा सा देश था, फ्रान्स में राज-सत्ता के विपरीत रक्त-क्रान्ति हो गई, इन सब संयोगों से भारत में पैर फैलाने के लिए अंग्रेजों को बहुत अवसर मिल गए, और प्रगति की दौड़ में अंग्रेज यूरोप के सब देशों से आगे बढ़ गए।

पाश्चात्य संस्कृति से हमारा सम्बन्ध अंग्रेज़ों ही के द्वारा हुआ। इंग्लैण्ड में मध्यम वर्ग ने व्यापार पर अधिकार करके सरदारी सत्ता पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। हमारे राजा ऐयाश और घमंडी थे। साधारण बात पर लड़ पड़ते थे, परन्तु अंग्रेजों को युद्ध नहीं, व्यापार चाहिए था, युद्ध करना भी पड़ता तो व्यापार के लिए। अभिमान तो उन्हें था ही नहीं। मुगलों के दरबारों तथा पेशवाओं के यहाँ उनका मजाक उड़ाया गया, अपमान भी किया गया, पर वे पीछे नहीं हटे। सबसे बड़ी बात यह है कि व्यापार के कारण उनका हाथ कभी तंग न रहा, पैसा हमेशा उनके हाथों में खेलता रहा। इससे वे सेना का वेतन सदा समय पर देते रहे, जब कि राजा-महाराजाओं की सेनाओं के वेतन कभी समय पर मिलते ही न थे। इसी से उनकी सेना व्यवस्थित रही, और सदैव वे जीतते ही गए।

जब अंग्रेजों के द्वारा पाश्चात्य सस्कृति की लहरें भारत में काबुल तक जा टकराई तो भारत की केवल राजनैतिक ही नहीं—धार्मिक और सामाजिक स्थिति पर भी भारी क्रांतिकारी प्रभाव पड़ा। उन स्वेच्छाचारी राजाओं और नवाबों के काल में लोगों को अंग्रेजों की राजनीति बहुत भा गई। और आबाल वृद्ध कहने लगे कि अंग्रेजी राज्य बहुत अच्छा है। पर उसके साथ ही बाइबिल अपना काम करने लगी। लोग धर्म-परिवर्तन करने लग। खासकर दलित हरिजन।

इसी समय राजा राममोहन राय ने बाइबिल को तो नहीं, पर उसकी एकेश्वरी सत्ता को आत्मसात् किया। यह मस्लिम धर्म के अनुकूल भी था। उन्होंने इसके लिए उपनिषद् का सहारा लिया और ब्रह्म-समाज की स्थापना की। उन्होंने जाति भेद को बहिष्कृत किया। इसका पण्डित-मण्डली ने विरोध अवश्य किया—परन्तु शिक्षित वर्ग ने इस धर्म को अपनाया। परन्तु अंग्रेजी भाषा के द्वारा अंग्रेजो इतिहास के अध्ययन करने से ब्रह्म समाज की प्रगति रुक गई। अंग्रेजों ने मेकाले के आग्रह से भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रारम्भ किया और नौकरी की आशा से उच्चवर्ग के

हिन्दू अंग्रेजी सीखने लगे। अंग्रेजों ने इस बात का कोई प्रतिबन्ध नहीं रखा था कि ईसाई बने बिना नौकरी न दी जायगी। फलतः अंग्रेजी पढ़-पढ़कर उच्चवर्गी हिन्दू ही अंग्रेजों के नौकर बनकर अंग्रेजी राज्य को जड़ जमाने में बड़े कारगर प्रमाणित हुए। इनके द्वारा साहब लोगों को भारतीय घरों में कहाँ क्या हो रहा है, यह सब मालूम हो गया। चूंकि सरकारी नौकरियों में ब्राह्म धर्म का कोई उपयोग न हुआ तथा उसमें ब्राह्मों के लिए कोई स्थान ही न था, इसमें ब्राह्म धर्म को समर्थन नहीं मिला, उसकी प्रगति रुक गई। केवल विलायत गये लोग जिन्हें ब्राह्मण जाति-बहिष्कृत कर देते थे, ब्राह्म धर्म अंगीकार कर लेते थे।

अंग्रेजी सीखने पर हिन्दुओं को यह पता लगा कि अंग्रेजों के उत्कर्ष का मूल कारण उनकी बाईबिल या ईसाई धर्म नहीं है, देश-भक्ति है। अंग्रेज अपने देश के लिए बड़ी-से-बड़ी हानि उठा सकता है, पर हिन्दू नहीं। हिन्दू अधिक-से-अधिक अपने धर्म के लिए कष्ट सह सकता था। देश की कल्पना तो उन्हें थी ही नहीं। इसीसे उन्होंने मुसलमानों को देश-विजय कर लेने दिया, पर धर्म के लिए कटते-मरते रहे। अब अंग्रेजी भावना से ओत-प्रोत शिक्षित हिन्दू-वर्ग में देश-भक्ति का भाव उदित हुआ, और उनमें यह धारणा उदित हुई कि हिन्दुओं में देशाभिमान जाग्रत किया जाय तथा देश की एकता के लिए एक धर्म और एक भाषा की भी आवश्यकता का उन्होंने अनुभव किया। इस कार्य में सबसे बढ़कर ऊँची आवाज उठाई स्वामी दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने। उत्तर भारत में एक प्रबल शक्ति का स्रोत प्रवाहित कर दिया—जिसमें एक वैदिक धर्म, जो सब हिन्दुजनों से समर्थित था, एक आर्य भाषा और एक देशीयता की भावना मूलबद्ध थी। सारा देश सामूहिक रूप से दयानन्द की आवाज से जाग उठा।

इसके बाद ही दक्षिण में लोकमान्य तिलक ने शिवाजी-उत्सव और गणेश-उत्सवों की नींव डाली। शिवाजी मराठा राज्य के संस्थापक थे और गणेश पेशवाओं के देवता। दोनों ही महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय

थे। इसलिए दोनों ही को आगे लाकर हिन्दुओं में देश-भक्ति और राष्ट्राभिमान जाग्रत करने की युक्ति लोकमान्य तिलक ने खोज निकाली। इसका अच्छा फल हुआ।

गांधी जी ने अपना कार्य भारत में नहीं, दक्षिण अफ्रीका में प्रारम्भ किया। वे एक मुसलमान व्यापारी के मुकदमे की पैरवी करने को वहाँ गए और वहीं वकालत करने लगे। वहाँ अपने देश-भाइयों के साथ अत्याचार होते देखकर उसका प्रतिकार करने को सत्याग्रह के प्रयोग करने लगे। दक्षिण अफ्रीका में नीग्रो लोग बहुत थे पर वे बुद्धिमान नहीं थे। इससे वे गोरों का काम अच्छी तरह नहीं करते थे। इससे अंग्रेजों ने भारत से बहुत से मजदूर कुली निश्चित अवधि तक नौकरी करने की प्रतिज्ञा पर भरती किये। अवधि समाप्त होने पर भी वे लोग वहीं बसकर छोटा-मोटा व्यवसाय करने लगे। उनमें से कुछ समृद्ध भी हो गए। इन सबके प्रति वहाँ के गोरे अधिकारियों का बड़ा भारी पक्षपात था। गांधी जी ने वहाँ बहुत कुछ किया। पीछे महायुद्ध आरम्भ होने पर वे भारत लौट आए और स्वराज्य के लिए समूचे भारत में सत्याग्रह करने का आयोजन करने लगे। परन्तु उनके मार्ग में बड़ी कठिनाइयाँ थीं। जिनमें सबसे बड़ी कठिनाई हिन्दू-मुसलमानों की फूट थी। परन्तु सन १९१६ में लखनऊ में कौंसिल के स्थानों के सम्बन्ध में हिन्दू-मुसलमानों में समझौता हो गया। उधर यूरोपीय महायुद्ध की समाप्ति पर तुर्की के समर्थन में भारतीय मुसलमानों ने खिलाफत-आंदोलन प्रारम्भ कर दिया। इसी समय अंग्रेजों ने रौलट-एक्ट पास करके भारत के नरम दली नेताओं को नाराज कर दिया। इन सब परिस्थितियों से लाभ उठाकर गांधी जी ने सत्याग्रह का भारत में श्री गणेश किया। इसी समय पंजाब में डायर द्वारा अमृतसर का हत्याकाण्ड हुआ तथा वहाँ मार्शल लॉ का दमन किया गया। अब पंजाब का मार्शल लॉ और हत्याकाण्ड, खिलाफत-आंदोलन, रौलट एक्ट का विरोध ये सब कारण एकत्र होने से गांधी जी का सत्याग्रह सहसा तीव्र हो उठा। संसार की

आँखें उधर जा लगीं, अंग्रेज भी घबरा गए। पर इसी समय चौरा-चौरी काण्ड हो गया और गांधी जी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया—अंग्रजों का संकट टल गया, उन्होंने अवसर पाकर गांधी जी को जेल में भेज दिया।

दो वर्ष बाद जब गांधी जी बाहर आए तो उन्होंने खादी, राष्ट्रीय शिक्षा प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और अस्पृश्यता-निवारण इन चार विधायक कार्यों का भारत में प्रसार किया।

१९२९ में श्री जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस के अध्यक्ष की कुर्सी से कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वतंत्रता घोषित किया। कांग्रेस-अधिवेशन समाप्त होने पर गांधी जी ने अपनी ११ शर्तें वाइसराय के समक्ष पेश कीं। तथा मार्च में नमक-सत्याग्रह छेड़ दिया, एक महीने ही में उन्हें पकड़ कर यरवदा जेल में ठूँस दिया गया। परन्तु सत्याग्रह का वेग कम नहीं हुआ। वाइसराय को मार्शल लॉ स्थापित करना पड़ा और अंततः गांधी जी के साथ विराम सन्धि करनी पड़ी। संधि-वार्तालाप के लिए गांधी जी इंग्लैंड गए वहाँ उनका अपूर्व स्वागत हुआ। बादशाह ने भी उनसे भेंट की। परन्तु संघर्ष बढ़ता ही गया, मिटा नहीं।

मैंने कहा कि पाश्चात्य देशों का इस युग में सबसे बड़ा देवता 'देश' माना गया। गत महायुद्ध में जर्मन कैथोलिकों ने अपना और फ्रेंच कैथोलिकों का रक्त इसी देवता को अर्पण किया था, इसी देवता की आराधना के लिए अमेरिका के जर्मन-प्रवासियों ने जर्मनी में रहने वाले अपने भाइयों की निस्संकोच हत्या की। इस देश-पूजन के सामने न किसी का धर्म-प्रेम चला, न जाति-भावना। देशाभिमान के नशे में मस्त होकर पाश्चात्य राष्ट्रों ने इस सभ्य युग में खूब ही नर-बलि दी, दिल खोलकर नर-रक्त में स्नान किया। यह 'देश' नाम का नया देवता हमारे यहाँ अंग्रेजों के साथ आया और मध्यम वर्गीय हिन्दुओं में इसका प्रचार राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। बंकिम का 'बन्दे मातरम्' इसका मूल मन्त्र बन गया। प्रारम्भ में मुसलमानों में इकबाल ने इस देवता के गीत गाए पर मुसलमानों

में वह भावना जड न जमा सकी। मुसलमानों ने भारत को देश-देवता नहीं माना, वह उनका 'आदि दैवत' नहीं बना, न उनमें देशाभिमान जाग्रत हुआ। वे उसे अपने बाप-दादों की विजित सम्पत्ति समझते रहे। जहाँ हिन्दू भारत को 'मातृभूमि' समझकर उसकी पूजा कर रहे थे, वहाँ मुसलमान उसे अपनी फतह की हुई 'भोग्या लौंडी' समझ रहे थे। इसी ने पहले खिलाफत, फिर पाकिस्तान के विभाजन और विभाजन के ऐतिहासिक रक्त-पात को जन्म दिया।

यूरोप के राष्ट्र बाइबिल के देव का महत्त्व तभी तक समझते थे जब तक वह इस 'देश' नामक देवता का बाधक नहीं। इसी प्रकार हिन्दुओं में भी वही भावना जमी—पर मुसलमानों में उसका बीज अंकुरित तो हुआ पर पल्लवित नहीं हुआ। हिन्दू नेताओं ने हिन्दुओं को पाश्चात्यों-जैसा देशाभिमानी बनाने के लिए प्रथम धार्मिक पंथों और गणपति-उत्सव-जैसे उत्तेजक मार्ग निकाले और अन्त में सम्पूर्ण देश के हिन्दुओं में यह भावना फैल गई कि पहले हम अच्छे थे पर अंग्रेजी शासन से हम गिर गए हैं—इसी से उनमें उत्कृष्ट देशाभिमान जाग उठा।

मुसलमान शताब्दियों से इस देश में रहते आए थे, पर उनका ध्यान मक्का की ओर रहा और इधर तो वे सम्पूर्ण मस्लिम राज्यों के संगठन का ही स्वप्न देखने लगे। यद्यपि उनके मन में यह बात थी कि उनसे गलतियाँ हुई हैं, इसी से उनका राज्याधिकार चला गया है और अंग्रेजी राज्य में जहाँ हिन्दुओं में देश-भक्ति के कारण देश के प्रति बलिदान की भावना का उदय हुआ वहाँ मुसलमानों के मन में अपना राज्य फिर से प्राप्त करने के हौसले जागने लगे। उनका खयाल था कि अफगानिस्तान, पर्शिया, तुर्की, अरब आदि मुस्लिम देशों के मुसलमानों मे एकता हो जायगी और बंगाल से कुस्तुनतुनियाँ तक मुसलमानों का एकछत्र राज्य हो जायगा। इसी भावना से उन्होंने प्रथम सिन्ध प्रान्त को पृथक् करने की माँग की, फिर बंगाल और पंजाब में बहुमत प्राप्त करने की और इस प्रकार देश-हित के सम्बन्ध में हिन्दुओं के वे संगी

साथी न रहे--प्रतिद्वन्द्वी हो गए। और उन्होंने आग्रह पूर्वक उसी प्रकार भारत का बटवारा भी कर डाला--जैसे दो भाई अपने पिता की सम्पत्ति का बटवारा कर लेते हैं। देशभ-क्ति, देशाभिमान, देश आधिदैवत, की उन्होंने तनिक भी चिन्ता न की।

परन्तु मुसलमानों के इस प्रयत्न का जब हिन्दुओं को पता चल गया तो वे निष्क्रिय न बैठे रहे। महामना मालवीय ने कायदे आजम जिन्ना का तुर्की-ब-तुर्की जवाब दिया। उन्होंने बौद्ध धर्म के प्रति समादर प्रकट करके तथा बौद्ध संस्कृति को हिन्दू सस्कृति में सम्मिलित करके एवं भारत को बुद्ध की प्रतिष्ठा-भूमि कहकर बर्मा, चीन, स्याम, जापान आदि देशों के बौद्धों को सहानुभूति तथा आत्मीयता प्राप्त करने के उद्योग किये। परन्तु मुसलमानों ही की भाँति हिन्दुओं के यह प्रयत्न भी 'देश-भक्ति' के लिए घातक थे। हिन्दू-मुसलमान दोनों की चेष्टाएँ 'देशाभिमान' की विरोधिनी थी, यदि हिन्दू मुसलमान दोनों में पाश्चात्यों-जैसा देशाभिमान भारत में जाग्रत हो पाता तो भारत के हिन्दू मुसलमान एक होकर एक ओर हिन्दुस्तान के चारों ओर बिखरे हुए बौद्ध देशों को तथा उसी प्रकार मुस्लिम देशों को कुचल डालते। और भारत की स्वतन्त्रता के काल में हिन्दू-मुसलमानों ने जो परस्पर रक्त बहाया वह न बहाकर उन्हें ज़ेर करने वाले अंग्रेजों का रक्त बहता और तब कदाचित् एक भी अंग्रेज-बच्चा जीवित स्वदेश न लौटता। परन्तु पड़ोसी देशों के सौभाग्य से तथा अंग्रेजों के पुण्य प्रताप से वैसी देश-भक्ति की स्थापना हिन्दू-मसलमानों में फलीभत न हुई। और अंग्रज हिन्दू-मुसलमानों को अपने ही रक्त में स्नान करता छोड़कर फूलों और प्रशंसाओं से लदे-फदे सुख-चैन से सही सलामत अपने घर लौट गए।

परन्तु गांधी जी ने पाश्चात्यों के इस देवता के आगे सिर नहीं झुकाया। उन्होंने 'देश-भक्ति' को, जिसे हिन्दू अंगीकार कर चके थे, तथा साम्प्रदायिकता को, जिस पर मुसलमान कट मरने को तैयार थे--उपेक्षा भाव से देखा। वे अपना नया देवता लेकर आगे आए। वह

देवता था 'मनुष्य'। उन्होंने 'मनुष्य-पूजन' की परिपाटी चलाई। उनकी पूजन-पद्धति थी—'सेवा'। वे अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक अपने इसी नवीन देवता की अकेले पूजा करते रहे, उन्हें उनके जीवन में एक भी साथी न मिला और वे इस देवता की पूजा करने में मर मिटे। केवल कांग्रेस के राष्ट्रवादियों ने उनके कुछ आदर्शों को आंशिक रूप से अपनाकर उनकी सहानुभूति प्राप्त की।

आज भी गांधी का यह देवता 'मनुष्य' बिना पूजन पड़ा है। आज भी गांधी के स्थान पर कोई पुरुष आगे बढ़कर इस नए देवता की पूजा नहीं कर रहा। पाकिस्तान बन जाने के बाद भारत के मुसलमान अतिथि की भाँति भारत में रह रहे हैं। और कांग्रेस के राष्ट्रवादी राष्ट्र की दलदल में फँस रहे हैं। राष्ट्रीयता की भावना उनका बेड़ा गर्क कर रही है, गांधीवादी जन अभी भी विमूढ़ हैं। उनमें केवल प्रदर्शन भर है, जीवन नहीं। परन्तु गांधी के इस देवता 'मनुष्य' का पूजन नहीं हुआ, पर वह यदि संसार की जातियों का अधिदैवत नहीं बना तो संसार की खैरियत नहीं है।

यूरोप ने बड़ी ग़लत राजनीति भारत में अपनाई है, इसमें आगे चलने की राह नहीं है। संक्षेप में मैं यहाँ इसकी भी चर्चा करना ठीक समझता हूँ।

भारतीय राजनैतिक क्रांति का रूस की क्रान्ति से बहुत गहरा सम्बन्ध है। सन् १९०५ के पूर्व रूस के आतंकवादियों ने बम प्रयोग किये थे और गुप्त समितियों की स्थापना की थी। उसी की प्रतिध्वनि बंग-भग के समय बंगाल में हुई, जिसका सिलसिला बहुत आगे तक चला। सन् १९०५ में जब रूस-जापान-युद्ध के कारण रूस में घोर अकाल पड़ा तो बोलशेविकों ने अपनी आवाज ऊँची की। देशव्यापिनी हड़तालें कराई गईं, पर जारशाही ने पराकाष्ठा का दमन करके बोलशेविकों को कुचल डालने की चेष्टा की। अंत में जारशाही का सन् १९१७ में अंत हुआ, और कैरेनस्की रूसी प्रजातंत्र का नेता

बनां। उसने अमेरिका से इस शर्त पर ऋण लिया कि वह युद्ध से न हटेगा। उन दिनों विश्व-युद्ध में अमेरिका जर्मनों के विरुद्ध मित्रराष्ट्रों के साथ लड़ रहा था, पर रूसी लड़ाई से ऊब गए थे, उन्होंने अपनी बंदूकें रख दीं और वे अपने-अपने खेत जोतने चले गए, कैरेनस्की को अपनी वक्तृत्व शक्ति के बल पर लड़ाई जारी रखना असंभव हो गया, इस अवसर से लाभ उठाकर लेनिन आगे आया। उसने तीन नारे बुलन्द किये—'मिलें मजदूरों की, ज़मीन किसानों की, और लड़ाई बन्द'। ये नारे जनता को भा गए, और बिना अधिक रक्त-पात के रूस पर बोलशेविकों का अधिकार हो गया। मित्रराष्ट्रों पर यह भारी संकट था। वे डरने लगे कि कहीं यह बोलशेविक भालू—उनके पूँजीवाद को न ग्रस ले। उन्होंने इस नये पंथ को कुचलने के प्रत्येक प्रयत्न किये जो अब तक जारी हैं, और वे घोर नृशंस रूप धारण कर चुके हैं। आगे वे कैसे घोरतम होंगे—यह नहीं कहा जा सकता।

रूस की इस महा क्रान्ति का प्रभाव सारे संसार पर पड़ा, भारत भी उससे अछूता न रहा। पूँजीवादी राष्ट्रों ने हिटलर—मुसोलिनी और चाँग काई शेक-जैसों को आगे बढ़ने के अवसर दिए, भारत में अंग्रेजों ने रूस की इस लाल क्रान्ति की छाया न पड़ने देने के बड़े-बड़े प्रयत्न किये, परन्तु भारत का मध्यम वर्ग स्वतंत्र होने के लिए सब-कुछ कर गुजरने को तत्पर हो गया, और भारी-से-भारी विरोध के बावजूद उसके मन में शक्तिमान बोलशेविक मार्ग से चलकर सारे मजदूर वर्ग को स्वतंत्र करने की भावना जड़ पकड़ती गई।

यहाँ जापानी चमत्कार को भी हम नहीं भूल सकते। जिस सरदारी सत्ता से निकलकर मध्यमवर्गीय सत्ता स्थापित करने में इंग्लैण्ड, फ्रान्स और जर्मनी को सैकड़ों वर्ष लग गए, वही काम जापान ने केवल तीस वर्ष में कर डाला। सन १८५३ तक जापान का अन्य राष्ट्रों से कोई सम्बन्ध ही न था, पहले एक डच कम्पनी का यत्किंचित्

व्यापार-सम्बन्ध जुड़ा, फिर अमेरिका ने जोर-जुल्म से एक संधि की, उसके बाद ब्रिटेन, फ्रेंच, डच तथा अमेरिकन राष्ट्रों ने जापान की अप्रतिष्ठा करने में कोई कसर न उठा रखी, परन्तु सन १८६६ से जापान का तरुण मण्डल जाग उठा, उन्होंने यूरोप और अमेरिका जाकर—शिल्प-वाणिज्य और युद्ध-कला का अध्ययन किया, और केवल तीस साल में ही महान् चीन को परास्त करके फारमूसा और कोरिया को अधिकृत कर लिया।

भारत में गांधी जी के नेतृत्व में जब एक लाख आदमी जेल गए, जो अधिकांशतः में मध्यमवर्गीय तरुण थ, तो उन्हें इस पाश्चात्य साहित्य और रूस तथा जापान की क्रान्ति से सम्बन्धित साहित्य को अध्ययन करने तथा उस पर मनन करने एवं रोषावेषि हो उसका प्रयोग अंग्रेजी राज्य पर करने की भावना को अकुरित करने का बहुत सुयोग मिला। और उन्होंने सन् ३४ ही में समाजवादी दल की स्थापना कर ली। पाश्चात्य संस्कृति के सहयोग से जो देशाभिमान उनमें जाग्रत हुआ उसने उनकी अन्तरात्मा तक से पौराणिक या वैदिक संस्कृति का एक प्रकार से लोप कर दिया। वे स्वीकार करने लगे कि देश के हित के लिए वे किसी भी सम्प्रदाय या देवता की आन नहीं मानेंगे। परन्तु मुसलमानी अभिमान देशाभिमान का सबसे बड़ा दुश्मन था, दूसरा काँटा राष्ट्रीयता का था, वे इस सबके ऊपर सारे श्रमजीवी मजदूर वर्ग का सामूहिक संगठन करना चाहने लगे। और इसी मजदूर वर्ग के आधार पर भारतीय स्वतन्त्रता की इमारत खड़ी करने की चेष्टा करते रहे। उनका यह श्रमजीवी वर्ग देशाभिमान को भी पार कर गया। और गांधी जी के देवता 'मनुष्य' का स्पर्श कर गया, पर गांधी जी के सम्पूर्ण मनुष्य को नहीं केवल उसके चरणतल-मात्र को।

इस प्रकार देशाभिमान और समाजवाद ने मिलकर भारत के हिन्दू समाज को पौराणिक संस्कृति के तमोगुण से बाहर खींच निकाला।

परन्तु गांधीजी ने जिस 'मनुष्य' नाम के नये देवता की प्रतिष्ठा अपने मानस में की, उसकी ओर तो न भारत का ध्यान गया, न यूरोप का, न अमेरिका का, न रूस का। रूस अपनी राह पर चलता हुआ श्रमजीवी वर्ग को सम्पन्न कर रहा है। यूरोप और अमेरिका पूँजीवाद के चक्कर में पड़े हैं। और भारत कुछ राष्ट्रवाद की दलदल में, कुछ पूँजीवाद के जाल में, कुछ राजनीति के बीहड़ बन में उलझ रहा है। गांधीजी के निकट सम्पर्क से उसने लाभ उठाया। अंग्रेजों की पराधीनता का जूआ उसने उतार फेंका, राज-सत्ता का भी लोप करने के चमत्कार में उसने जापान तक को मात कर दिया। फिर भी वह गांधीजी के नये देवता 'मनुष्य' को अपनी पूजा का केन्द्र नहीं बना पाया।

गांधीजी के इस 'मनुष्य देवता' की पूजा का मूल आधार ही अहिंसा है। अहिंसा ही सच्ची मानवी संस्कृति है, गांधीजी ने इस तत्त्व को पकड लिया। उन्होंने अति नैसर्गिक बात पर लक्ष्य किया कि माता-पिता यदि अपनी अबोध सन्तति के प्रति पूर्ण अहिंसात्मक वृत्ति न रखें तो न मनुष्य-समाज की वृद्धि हो सकती है न पशु-समाज की। अपनी सन्तान के लालन-पालन में आज भी माता-पिता को बड़े-बड़े त्याग और पुरुषार्थ करने पड़ते हैं। परन्तु अत्यन्त प्रारम्भिक काल में जब सभ्यता का उदय नहीं हुआ था, माता-पिताओं को अपनी सन्तान के लिए बड़े कष्ट झेलने पड़ते होंगे। कदाचित् उन्हीं की सुरक्षा के लिए उन्हें एक नेता के नेतृत्व में एकत्रित होकर रहना पड़ा, जिसने आगे चलकर मनुष्य को सामाजिक प्राणी बना दिया।

एक समय ऐसा भी था जब मनुष्य केवल अपने 'आखेट-साम्राज्य' पर निर्भर था। वह दल बाँधकर रहता था, प्रत्येक दल अपने स्त्री-बच्चों और सैनिकों और घायलों के प्रति सदय और अहिंसक था। पर दूसरे दलों के लिए हिंसक। आखेट चाहे मनष्य का था, चाहे पशु का। उसे बाल-बच्चों सहित मार डालना ही निरापद था। इसी

से विजयी टोलियाँ विजितों को मार डालती थीं। पीछे उन्हें दास बनाकर उनसे सेवा लेना उन्होंने सीखा। बाद में जब वह अन्न पर निर्वाह करने लगे तब तो पराजितों की उपयोगिता बहुत बढ़ गई। उनके परिश्रम से उपार्जित सम्पत्ति का उपभोग करने की उन्होंने राह निकाल ली। इससे विजयीजन शारीरिक परिश्रम से मुक्त होकर कला-कौशल, युद्ध-कला और विज्ञान में आगे बढ़ते गए। उनके दल उच्च और और सभ्य बन गए। वे नागरिक बने, दो नगर समीप-समीप बसे। उनकी सीमाएँ मिलीं। सीमाओं के निपटारे के लिए युद्ध-विग्रह होने लगे। युद्धों का शौर्य भी एक कला का रूप धारण कर गया। योद्धाओं की फिर एक जाति बन गई। इसके बाद उनके काल्पनिक देवताओं की पूजा करने वालों की भी। योद्धाओं की जब जाति ही बन गई तो वे कारण अकारण सर्वत्र युद्ध करने लगे। यह उनका पेशा ही बन गया। सबल योद्धाओं ने निर्बलों को अधीन करके साम्राज्य की स्थापना कर ली। और तब काल्पनिक देवताओं के साथ इस जीते-जागते देवता, सम्राट् या राज्य की भी पूजा होने लगी।

परन्तु ये सम्राट् भी निर्भय न रहे। वे सीमान्त के खतरों से सदा घिरे रहे। युद्ध अब उनका प्रधान कर्तव्य बन गया। युद्ध द्वारा ही एक साम्राज्य को विध्वस्त करके दूसरे साम्राज्य की स्थापना होने लगी। ऐशो-आराम में पड़े 'सम्राट्' पराभूत होते और साहसी लोग अपना नया साम्राज्य स्थापित करते गए।

बहुधा ऐसा हुआ कि नया साम्राज्य स्थापित करने वाले पिछड़े हुए लोग सुधरे हुए लोगों से बहुत शिक्षा ग्रहण करते रहे। बेबिलोनिया म हजारों वर्ष तक ऐसा ही हुआ। शुरू में दक्षिण बेबिलोनिया में सुमेरियनों के राज्य स्थापित हुए। उन्हें सेमेटिक लोगों ने विजित किया, परन्तु वे पिछड़े हुए थे। उन्होंने सुमेरियनों की संस्कृति ज्यों-की-त्यों अपना ली। यही हाल केशिजनों का हुआ। जो केवल घुड़सवारी में प्रबल होने ही से विजयी हुए। उन्होंने बेबिलोनिया में साम्राज्य स्थापित

करके वहाँ की ही संस्कृति अपना ली। यही हाल रोमन्स का हुआ। ग्रीस को उन्होंने जीतकर ग्रीकों को दास बनाया फिर वे ही ग्रीक उनके गुरु बन गए। भारत में शकों का यही हाल हुआ, उनका केवल 'महादेव' देवता बचा रहा—शेष सब तरह से उन्होंने हिन्दू संस्कृति अपना ली। हिन्दुओं ने उनके देवता को अपना लिया। हूण, गुर्जर, मालव आदि ने भी अपने राज्य स्थापित किये, पर उनके सब आचार और देवता लुप्त हो गए। सभी ने भारतीय संस्कृति अपना ली। हूणों और गुप्तों में बड़े बड़े-युद्ध हुए—हूणों ने उत्तर भारत में अत्याचार भी कम नहीं किये, पर अंत में वे भी हिन्दू हो गए। परन्तु जब-जब ये विजित पिछड़े हुए लोग पराजित उन्नत लोगों की संस्कृति को अपनाना नहीं चाहते रहे—तब-तब विजित लोगों पर भारी संकट आए। उदाहरण के लिए हम चंगेज खाँ और उसके वंशज मुगलों को लेते हैं, इन्होंने पूर्वीय यूरोप और मध्य एशिया पर कब्जा किया, पर न मुसलमानों की संस्कृति अपनाई, न ईसाइयों की। परिणाम स्वरूप समरकन्द, बुखारा आदि मध्य एशिया के देशों तथा रूस का सत्यानाश हो गया। इन प्रदेशों की संस्कृति ही नष्ट-भ्रष्ट हो गई।

मुसलमानों के उदाहरण भी ऐसे ही हैं। वे जिस देश में नंगी तलवार लेकर घुसे, अपने इस्लामी धर्म के जनून में उन्होंने उस देश की संस्कृति को अत्यन्त हिकारत की नज़र से देखा। उन्होंने निर्दयता पूर्वक मिस्र और ईरान की उत्कृष्ट संस्कृति नष्ट कर डाली। हिन्दू-संस्कृति को वे पूर्णतया नष्ट तो न कर सके पर मुस्लिम राज्य-काल में उसकी भारी अवनति हुई। हिन्दुओं ने उनके हाथ से अवर्णनीय कष्ट भोगे।

साम्राज्यवाद बहुत पुरानी संस्था थी। पर इसमें दो भारी दोष थे। एक तो यह कि इसमें बहुसंख्यक जनों की दासता स्वीकार करनी पड़ती है। और लोग निर्बुद्धि हो जाते हैं। लोग समझने लगते हैं कि राज्य के बिना काम ही नहीं चल सकता—राजा परमेश्वर का

अवतार माना जाता है। वह स्वेच्छाचारी भी होता है। राजा अपनी इच्छा से जिस देवता की पूजा करता है उसके सरदार भी उसे ही पूजने लगते हैं। हिन्दुओं में ऐसा ही हुआ। ब्राह्मणों ने इन राजाओं को ईश्वर के समान बताकर तथा उनके स्थापित देवताओं को पूजकर भारी-भारी दक्षिणा प्राप्त करके खूब मौज मजा किया। सर्व साधारण को इन राजाओं और उनके समर्थक ब्राह्मणों की दासता स्वीकार करके जीना पड़ा। और इस स्थिति में वे दलित श्रमिक स्वदेश या भविष्य की उन्नति के विषय में सर्वथा उदासीन बन गए। वे भाग्य ही को प्रबल मानने लगे। इस प्रकार जब उनमें बुद्धि-मालिन्य उत्पन्न हो गया था तभी मुसलमान-जैसे शत्रु घर में घुस आए और उनके सम्मुख ये हिन्दू-जन विमूढ़ और निरुपाय बैठे रहे।

परन्तु पाश्चात्यों के सम्पर्क से जो व्यापारिक क्रांति का बीज भारत में आया उसने मध्यम वर्ग का प्रभुत्व बहुत बढ़ा दिया। इससे दलित श्रमजीवियों को भी कुछ सन्तोष हुआ। बुद्धिमान जन पूंजीपति बन गए। कृषक और शिल्पी अपने उद्योग में लग गए। इससे जो शांति, व्यवस्था और सम्पन्नता भारत में उत्पन्न हुई; इसका श्रेय अंग्रेजी राज्य को मिला, यहाँ तक कि राजा राममोहनराय तो इसे ईश्वरीय व्यवस्था (Divine Dispensation) तक कहने लगे। पर सौ वर्ष के भीतर ही इस नई प्रणाली के दोष दीख पड़ने लगे। प्रत्यक नगर का कलेवर बढ़ गया। एक ओर तो पूंजीपतियों के महल खड़े हो गए जहाँ वे एशो आराम करने लगे—दूसरी ओर श्रमिकों की अत्यन्त हीन दशा हो गई। वे गाँव देहात छोड़कर इन नगरों में पशुओं की भाँति रहने और पेट के लिए कड़ा परिश्रम करने लगे। उनमें अनाचार भी बहुत फैल गया। सट्टे और घुड़-दौड़ का जुआ भी इस व्यापारिक युग में एक भयानक व्यसन हो गया। जिससे श्रमिक भी न बचा। दूसरा दैत्य मद्य उनके पीछे लग गया। इन श्रमिकों की दशा इतनी विपन्न हो गई कि उनके यह भाव स्थायी हो गए कि जन्म-भर दरिद्रता

का कष्ट भोगने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है, कदाचित् भगवान् ने उनकी इस इच्छा की पूर्ति के लिए ही हैजे, प्लेग, महामारी, चेचक, मलेरिया, इनफ्लूएञ्जा आदि घातक रोगों की सेना उन पर भेज दी, जिससे बूढ़ों की अपेक्षा जवान ही अधिक शिकार हुए और उनके आश्रित जन निराश्रित होकर और निरीह हो गए। उधर ये पूँजीपति राष्ट्र सम्पन्न तो हुए, पर उन पर एक घोर संकट आ गया। इंग्लैण्ड और फ्रान्स इन सबके चौधरी बने थे। जर्मन घाटे में था—पर उसकी जन-संख्या बढ़ रही थी, जापान की बढ़ती हुई शक्ति और यूरोप की फूट के कारण जर्मन चीन को हड़पने में सफल न हो सका—उसने खीझकर फ्रांस और इंग्लैण्ड के उपनिवेशों पर लोलुप दृष्टि डाली—और उसी से प्रथम महायुद्ध का सूत्रपात हुआ। इसके बाद जापान ने चीन को नोचना प्रारम्भ किया और मुसोलिनी अनीसीनिया को निगल गया, इस सब लूट-खसौट और आपा-धापी से पूँजीपति राष्ट्र परस्पर का सहयोग और प्रेम खो बैठे और खूँखार भेड़ियों की भाँति लड़ पड़े। इधर ये द्वितीय महायुद्ध में अपने ही रक्त से खेल रहे थे, उधर उन्हीं का श्रमिक वर्ग क्रांति के लिए अधीर बैठा था। इससे ये सारे ही राष्ट्र भय और आशंका से भर उठे।

यद्यपि बोलशेविक रूस इस भय से परे था। वहाँ के श्रमिक मजे में थे। परन्तु सारे ही पूँजीवादी राष्ट्र उसके विरुद्ध थे। द्वितीय महा-युद्ध के बाद ही उसका इन पूँजीवादी राष्ट्रों से गठ जोड़ा टूट गया। उधर द्वितीय महायुद्ध ने पूँजीवाद की रीढ़ की हड्डी तोड़ डाली। और अब उस तृतीय युद्ध का सूत्रपात हो रहा है, जिसमें यह सब पूँजीवादी राष्ट्र दफना दिए जायँगे।

भोग-तृष्णा मनुष्य के सब दुखों की जड़ है। शरीर के लिए आवश्यक वस्तुओं के उपभोग को तृष्णा नहीं कहते, जब इन वस्तुओं की लालसा बढ़ जाती है, वही तृष्णा है, यही मनुष्य में विषय

वासना उत्पन्न करती है, जो सब अनर्थों की जड़ है। मनुष्य के मन में जब तृष्णा का अंकुर फूटता है, तब तो बहुत अच्छा लगता है। परन्तु अन्त में वही तृष्णा उसे खा जाती है, और उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है। बुद्ध ने कहा है कि—"**आनन्द, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से पर्येषणा, पर्येषणा से लाभ, लाभ से निश्चय, निश्चय से आसक्ति, आसक्ति से अध्यवसाय, अध्यवसाय से परिग्रह, परिग्रह से मात्सर्य, मात्सर्य से आरक्षा, आरक्षा से दण्डादान, शस्त्रादान, कलह, विग्रह, विवाद, तू-तू मैं-मैं, पैशुन्य, असत्यभाषण आदि पापकारक बातें होती हैं**" (दीर्घ निकाय-महानिदान सूत्र)

यह भोग-तृष्णा भाई-भाई और सम्बन्धियों में कलह उत्पन्न कराती है। परन्तु यह भोग-तृष्णा जब जातियों में उत्पन्न होती है तब महाघातक युद्धों और ऐसे ही घोर महापातकों की सृष्टि होती है। कदाचित् इसी भोग-तृष्णा से विरत होने के लिए ईसा ने कहा था—**कि ऊंट सुई के छेद में जा सकता है—पर धनी व्यक्ति स्वर्ग में नहीं जा सकता।**

परन्तु बुद्ध और ईसा दोनों ही के धर्म संकेतों की अवहेलना करके मनुष्य परिग्रहवान बने। यूरोप में पूँजीवाद के जन्म के बार व्यक्ति से समष्टि में भोग-तृष्णा ने प्रवेश किया और वह समष्टि की भोग-तृष्णा ही राष्ट्र का नाम धारण कर बैठी। यह राष्ट्र सब छोटे-बड़े लोगों का था—इसमें सब छोटे-बड़े सामूहिक रूप से भोग-तृष्णा के भूखे थे—गत महायुद्ध के आरम्भ तक इन राष्ट्रों में भोग-तृष्णा खूब पनपी।

सोलहवीं शताब्दी में सबसे पहले अकाल और महामारी से पीड़ित होने पर इंग्लैण्ड के उच्चवर्गी जनों में राष्ट्रीय तृष्णा उत्पन्न हुई। और वे किसी भी संभव उपाय से अपने राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाने पर तुल गए, उधर उन्होंने अमेरिका में उपनिवेश स्थापित किये इधर ईस्ट इण्डिया कम्पनी स्थापित करके पूर्व में व्यापार का जाल

फैलाया। व्यापार में लाभ-हानि दोनों ही संभव थे परन्तु चतुर अंग्रेज लाभ के स्थान पर आगे बढ़ने और हानि के स्थान पर पीछे हटने लगे। लाभ के स्थानों पर वे दृढ़बद्ध हुए, और उसी के फलस्वरूप उन्होंने समुद्र पर अपना एकछत्र प्रभुत्व स्थापित करने में खून की नदी बहा दी। इसके लिए बड़े-बड़े युद्ध विग्रह-कलह हुए। जो अंग्रेज कवि गोल्डस्मिथ ने इंग्लैण्ड की इस राष्ट्र-तृष्णा को देख कर—जिसमें सारा देश ऐश-आराम के लिए झूठी सजधज से सज रहा था, जहाँ संपत्ति एकत्र हो रही थी पर मनुष्य का ह्रास हो रहा था—अपना 'डेजर्टेड विलेज' काव्य लिखकर इंग्लैण्ड को भावी संकटों का संकेत किया। पर उसे बहरे कानों ने सुना, और बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों ने यह कूटनीति स्थिर की कि देश-हित के लिए—राष्ट्र के उत्थान के लिए, अन्य देशों की संपदा अपने देश में लाने के लिए—कोई भी कुकर्म निन्द्य नहीं। भारतीय साम्राज्य पाकर अंग्रेजों का लोभ और भी बढ़ गया, और इसी से गत महायुद्ध की नौबत आई। यूरोपीय राष्ट्र आपस की लड़ाई में लगे रहे, इससे शह पाकर अंग्रेज समुद्र पर अजेय होकर अफ्रीका और पूर्वी देशों का भोग लेते रहे। पर अन्त में उस साम्राज्य-तृष्णा ही ने उन्हें पराभव दिया। द्वितीय महायुद्ध उन्होंने जीता तो पर लहरों की उनकी हुकूमत समाप्त हो गई, और भारत छोड़कर उन्हें अपने छोटे से टापू में भाग जाना पड़ा, अब दुनिया देखेगी कि आगामी दस वर्षों ही में ब्रिटेन एक साधारण राष्ट्र रह जायगा।

मनुष्य में अन्य सब प्राणियों की अपेक्षा एक वस्तु अधिक है—प्रज्ञा। 'प्रज्ञा' उस ज्ञान का नाम है जिसका विकास पूर्वानुभव से होता है। उसी प्रज्ञा के सहारे मनुष्य अपनी पिछली पीढ़ी के उपार्जित ज्ञान से लाभ उठाकर नया ज्ञान अर्जन करता है। परन्तु मनुष्य में प्रज्ञा के साथ ही अहिंसा का भी उदय होना चाहिए, यदि ऐसा नहीं हुआ तो मनुष्य की प्रज्ञा ही मनुष्य को नर-घाती बना देगी। वह दुर्बलों का पीड़क बना रहेगा। अब आप आधुनिक सभ्यता के विकास पर दृष्टि डालें तो

आप देखेंगे कि यूरोप के प्रवासियों ने आस्ट्रेलिया और अमेरिका में जाकर वहाँ के मूल निवासियों को निर्दयता से नष्ट कर डाला, अफ्रीका के निग्रो लोगों का संहार ही नहीं किया उन पर अत्याचार करने में कोई कसर भी नहीं रखी। उन्हें पशुओं से बदतर समझा और भेड़-बकरी की भाँति उन्हें बेचा। लाखों नीग्रो पकड़कर अमेरिका लाकर बेच डाले गए। भारत में भी अंग्रेजों ने धन-शोषण के बड़े वीभत्स प्रयोग किये, यह सब अहिंसा-शून्य प्रज्ञा के कारण।

कार्ल मार्क्स ने सामाजिक विकास का उत्कृष्ट मार्ग यूरोप के सम्मुख रखा। उसने बताया कि कैसे संसार के पीड़ितों को पीड़कों से बचाकर उनका संगठन किया जा सकता है। पर इस कार्य में अहिंसा का, खयाल उसे नहीं आया, उसने तो यही कहा कि सारे संसार के पीड़ितों को एकत्र होकर पीड़िको का संहार कर डालना चाहिए।

रूस ने ऐसा ही किया। परन्तु यदि सब पीड़ित एकीभूत हो जायँ तो पीड़कों को मारने की आवश्यकता ही न रह जायगी। पश्चिम की राजनीति की परम्परा हिंसा पर ही आधारित है, क्योंकि उसकी प्रेरणा उन्हें ग्रीकों से मिली है, जिनकी सारी संस्कृति नगरों तक सीमित थी अन्य नगरों से उसका पूर्ण विरोध रहा। उसी आधार पर यूरोप की राष्ट्रीयता संगठित हुई। जिसका मूल मंत्र था अपने राष्ट्र-हित के लिए कोई भी कुकृत्य उचित है। इसी से देश के हित के लिए व्यभिचार करना, झूठ बोलना, हत्या करना, छल-कपट का जाल रचना, सभी प्रशंसनीय ठहराये गए। जैसे ग्रीक अन्य नगरों को विरोधी समझते थे, यूरोप के राष्ट्र उसी भाँति अन्य राष्ट्रों को विरोधी समझते रहे। कार्ल मार्क्स ने राष्ट्रीयता की कैद से केवल श्रमिकों को निकाल बाहर कर एकता-बद्ध करने की सलाह तो दी, पर यूरोपीय नीति के इस दोष से वह न बच सका। इससे वहाँ राष्ट्रों का राष्ट्रों से जो बैर विरोध था वह यहाँ पूँजीपतियों और मजदूरों में कायम रहा।

कार्ल मार्क्स की यह नीति काँटे से काँटा निकालने-जैसी रही।

उसने समाजवाद के काँटे से राष्ट्रीयता के काँटे को निकालना चाहा। उसने कहा—"**सशस्त्र क्रांति करके पूँजीपतियों को मारो।**" पर टाल्सटाय ने कहा—"**नहीं, पूँजीपतियों के लिए शस्त्र ग्रहण मत करो।**" रूस में आंशिक रूप में यह प्रयोग सफल हुआ। जार ने लोगों को जबरदस्ती युद्ध-क्षेत्र में भेजना चाहा पर लोगों ने लड़ने ही से इन्कार कर दिया। इससे जारशाही स्वयं ही खत्म हो गई, यदि गत महायुद्ध के समय में ही सब यूरोपियन देशों के मजदूरों ने युद्धोद्योगों में काम करने से इन्कार कर दिया होता तो युद्ध एक सप्ताह भी नहीं चलता। और यूरोपियन राष्ट्र महायुद्ध के विनाश से बच जाते।

महावीर और बुद्ध ने सत्य अहिंसा को '**बहुजन हिताय**' की भावना से प्रचारित किया था। पर वह साम्प्रदायिक दलदल में फँस गया, उस अहिंसा का राजनीतिक क्षेत्र में उपयोग करने का श्रेय गांधी जी को है।

आज हम उस पुरुष की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो उस पग-ध्वनि के संकेत पर 'सत्य और अहिंसा' को ले जाकर गांधी जी के प्रस्थापित देवता 'मनुष्य' की विधि-विधान से पूजा करना कोटि-कोटि जनों को सिखावे।

ज्ञान धाम
दिल्ली शहदरा
१-१०-५२

—चतुरसेन

पात्र-परिचय

पुरुष

गांधी जी—विश्व-वन्द्य बापू

गुरुदेव—विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर

अध्यापक—विश्वभारती के अध्यापक

खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ—सीमान्त गांधी

विनयधर—नोआखाली का बंगाली युवक

रहमत—एक राष्ट्रीय मुस्लिम तरुण

हमीद
याकूब
शंकूर
अब्दुलमजीद
शहाबुद्दीन
नश्तर
} नोआखाली के मुसलमान

हरिलाल
रामदास
देवदास
} गांधी जी के पुत्र

गिल्डर—डॉक्टर

दिनेश महता—डॉक्टर

कर्नल भण्डारी—जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट

कर्नलशाह—जेल-अधिकारी

अपसुखलाल भाई—गांधी-परिजन

स्त्री

माधुरी—विनयधर की पत्नी

मौंसी—एक बंगाली महिला

कस्तूरबा—गांधो जी की पत्नी
सुशीला—डॉ० सुशोला नायर
मनु गांधो—हरिलाल भाई की पुत्री
मोरा बहन—गांधी जो की शिष्या
हुस्नजहां—शहाबुद्दीन की पत्नी
सकोना—शहाबुद्दीन को पुत्री
नसोबन—एक मुस्लिम महिला
अमतुल सलाम—गांधो जो को एक शिष्या

संतोष
प्रभावती } —गांधो-परिजन।

भाव-मूर्ति

हिंसा
पूंजी
राजनीति
अहिंसा
सभ्यता
नागरिकता
सत्य
धर्म
सत्याग्रह
खद्दर
असहयोग
सिपाही, परिजन आदि।

य एनं वेत्ति हन्तारं
यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो,
नायं हन्ति न हन्यते ॥

(व्यास)

१

उस चैत्य चत्वर पर शीतल वायु का प्रवाह पहुँचकर समाप्त हो गया। फूलों की राशि झड़कर बिखर गई। परन्तु यह रजनीगन्धा सघन पल्लवों के आँचल में किसी लज्जा के अवगुण्ठन में सिकुड़ी-सी खड़ी क्यों सिसक-सिसककर सुगन्धित दीर्घ निःश्वास छोड़ रही है? सुनो, सुनो, यह तो एक आन्तरिक वेदना का सुखद संगीत-सा प्रतीत हो रहा है।

२

संध्या के सूने और धुंधले, कुछ उजले कुछ मैल अन्धकार में वह कौन पक्षी उधर से एक चीत्कार-सा करता हुआ चला जाता है? फिर अर्द्ध निशा में जब रात दूध में नहाकर चाँदनी में अपना आँचल फैलाकर सोना चाहती है, तब वह कौन पक्षी सुरीली तान में लोरियाँ गाने लगता है? और उसका शावक बीच-बीच में स्वर मिलाकर प्रसुप्त वातावरण को तरंगित करता रहता है? किसके लिए? अरे, किसके लिए?

३

चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में कालिन्दी की धारा अपनी उज्ज्वल घन-श्याम घटा दिखाती बही चली जा रही है। कब से? कहाँ से? कहाँ को? क्यों? कब तक? अनन्त आकाश में जो वायु बह रहा है वह कब समाप्त होगा? 'कब? कब?

और अनन्त आकाश पर फैले हुए ये मेघ-खंड? क्षुद्र हृत्पिण्ड का यह अनवरत स्पन्दन? बहुरंगी प्रकृति की यह रूप-राशि? इन सबका कब अन्त होगा? कौन बोला—कभी नहीं। क्या कभी नहीं?? अरे ये मेघ-खण्ड, यह हृत्पिण्ड, यह रूप-राशि?? क्या कभी नहीं। इन्हें ऐसा ही

वेदर्षियों ने देखा, राम और कृष्ण ने देखा, वाल्मीकि और कालिदास न देखा, आज मैं देख रहा हूँ। मेरी पीढ़ियाँ देखती रहेंगी। यही आकाश म फले हुए मेघ-खण्ड, हृत्पिण्ड का अनवरत स्पंदन और प्रकृति की बहुरंगी रूप-राशि। रूप-राशि ! रूप-राशि !!!

४

यह वसन्त आया है, सो क्या इसीलिए? पुराने पत्तों का पतझड़ करने और नई कोंपलों को विकसित करने। अरे वाह, कैसी शीतल मन्द-सुगन्ध समीर से दिशाएँ व्याप्त हो रही है। बूंद-बूंद नवजीवन बिखरता जाता है।

धारा बह रही है।
पवन चल रहा है।
मेघ फैल रहे हैं।
हृदय स्पन्दित है।

किन्तु वह ? जिसके लिए अर्द्ध निशा मे कालिन्दी के इस तीर पर रजनीगन्धा सुगन्धित दीर्घ निःश्वासें छोड़ रही है, और आन्तरिक वेदना का गीत गा रही है ? वह ?

५

यह कौन सो रहा है भाई ? रक्त-हीन पीले कपोल, स्थिर नेत्रों की पुतलियाँ, निढाल अंग। यह गोद में क्या छिपाया है ? लाल, लाल, लाल। किन्तु एकदम शीतल। अरे, उष्ण रक्त में बर्फ घोली है ??तीन बार घंटा बज चुका। तीन बार होंठ फड़के, 'हे राम' कहा। हाँ, हाँ, कहा। हमने सुना। पर जगे नहीं ? देखो भाई, वह रजनीगन्धा सिसक-सिसककर··· कदाचित् तुम्हारे ही लिए। इसका अभिसार पूरा करो भाई ? रात दूध में नहा रही है। चाँदनी में उसका आँचल फैला है, कालिन्दी कल-कल करती बह रही है। वासन्ती शीतल, मन्द-सुगन्ध समीर, इस अभिसार की रात में सोना क्या ? सुनते हो नागर !!!

६

दिन तो निकल आया। चौकीदार का कुत्ता भौंक रहा है। उस वृक्ष पर पण्डुरव धीमे दर्दभरे स्वरमें कराह-सा रहा है। ठण्ड खूब है। वह गाय कहाँ से आकर थकी-सी उदास बैठी है। कालिन्दी की धार में सूरज सोने का थाल सजाये खड़ा है। सुनते हो। ओ नागर! आओ उस दिन की भाँति गाएँ·····'उठ जाग मुसाफिर भोर भई'। वह रजनीगन्धा·····।

७

वह माँ है, उसका विश्वासमय शिशु घुटनों के बल खड़ा होकर अपनी गुलाबी बाँह माँ को गर्दन में डालकर खेल रहा है। माँ की आँखों में और कुछ नहीं है। वह उसी छोटे से शिशु को सुखी रखने में मग्न है। आनन्द की धाराएँ उसके अन्तःकरण में विश्राम पा रही हैं। क्योंकि उसका शिशु उसी की गोद में·····, सुनते हो? ओ नागर!

८

उस दिन जहाँ तुम झुके थे। वहीं मैं भी झुका था, तभी मैंने देखा कि मेरा मानव होने का गर्व ढह गया। किन्तु मन का दर्प और ममता मेरे साथ थी। इसी से माँ की गोद में सुरक्षित शिशु की भाँति मैं संदेह-रहित न हो पाया। मैं विपत्तियों के सम्मुख खड़ा न रह सका। मेरे उठे हुए हाथ तुम्हारे कर-कमलों में थे। परन्तु अगणित जन के बोझ से भरी नाव उस अन्धकार में बिना केवट न खेई जा सकी। वह भँवर में जा फँसी। तभी से मैं तुम्हारी तलाश में भटक रहा हूँ।

९

अब क्या कहते हो? क्या मैं मानवीय गर्व बिलकुल ही त्याग दूँ? और उसका दंड स्वीकार करूँ? क्या यह सच है कि वह गर्व दैत्यों का है और यही मेरे और तुम्हारे बीच की दीवार है। परन्तु जहाँ मेरी यात्रा समाप्त हो, और मैं विश्राम की शैया पर पैर फैलाऊँ, वहीं क्यों न इस गर्व का विसर्जन करूँ?

१०

यौवन की उषा में मैं सत्य की खोज में निकला था। तब सोचा था कि मनुष्य को संदिग्ध रहना ही उचित है। संदेह के सम्मुख सत्य यदि अपरिवर्तित और स्थिर रहे, तो वह ठीक सत्य है। भीषण आँधी, तूफान और अग्नि-कांड में जो प्रतिमा न विकृत हो, न डिगे, वही ठोस वस्तु है। मैंने देखा वह समुद्र, जिसकी भीषण तरंगें तूफान के बाद चट्टानों से टकराती हैं, पर पहाड़ी नाले की भाँति समुद्र मर्यादा से बाहर नहीं हो जाता। उसके किनारे भंग नहीं होते। वह न मैदानी झील की भाँति स्थिर है, न मन्दवाहिनी नदियों की भाँति अमर्यादित। तब तुमने हँसकर उस हरिण की ओर संकेत किया था, जो मस्त होकर घास चरता है। मस्ती में आकर सींगों से झाड़ियों में उलझता है। और वसन्त की बयार के साथ मैदानों में छलाँगें भरता है। उसे उस समय तक किसी भय का भान नहीं होता, जब तक कि उसी का रक्त बहकर उसके खुरों तक न पहुँच जाय।

११

मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ कि क्या सचमुच मनुष्य भी इसी भाँति जिएगा? आशा और आनन्द के स्वप्न में? जिसमें जीवन को छोड़कर और कुछ दीखता ही नहीं है। अब कहो तुम, मनुष्य का आदर्श क्या है? वह, जो दीख पड़ता है या वह, जो निर्मित हो रहा है। दोनों का भेद क्या है?

१२

किन्तु तुम सो रहे हो नागर, माँ की गोद में गलबाहीं दिये। फूलों से लदे हुए, कालिन्दी के तीर पर, सुरभित वायु में स्वच्छंद, निर्भय। निर्द्वन्द।

और यह रजनीगंधा, सघन पल्लवों के आँचल में छिपी लज्जा को अवगुण्ठन में लिये खड़ी सिकुड़ी-सी सिसक-सिसककर सुरभित दीर्घ निःश्वास छोड़ रही है।

वह आन्तरिक वेदना का सुखद गीत गुनगुना रही है ।
कालिन्दी की धारा बह रही है ।
वासन्ती पवन चल रहा है ।
मेघ आकाश में फैल रहे हैं ।
हृदय स्पन्दित है ।
पर, तुम सो रहे हो नागर !
—सोते रहोगे ?
अभिसार न करोगे ?
रज.............

प्रस्तावना

[आगा खाँ महल का भीतरी प्रांगण। कस्तूर बा की समाधि। समाधि पर वर्षी मनाई जा रही है। देश-देशान्तर के स्त्री-पुरुष एकत्रित हैं। समाधि पर सामने भारत का रंगीन मानचित्र है। समाधि स्थल विविध-पुष्प-गन्ध से सुरभित है। बहुत से स्त्री-पुरुष-बाल मातृ-वन्दना कर रहे हैं। विविध प्रांतीय वेश-भूषाओं में दोनों पार्श्वों से सात कुमारिकाएँ हाथों की अंजलि में बड़े-बड़े कमल-पुष्प लिये नतमस्तक आकर खड़ी हो जाती हैं। उनकी वेश-भूषा में एक पंजाबी (सलवार, कुर्ता, दुपट्टा), दूसरी राजस्थानी (घाघरा-चूनरी-काँचली), तीसरी उत्तरीय प्रदेश (साड़ी-जम्पर), चौथी बंगाली (साड़ी-बाड़ी), पाँचवीं मद्रासी दक्षिणी (मद्रासी साड़ी), छठी मुस्लिम (दुपट्टा-पायजामा), सातवीं पारसी (पारसी साड़ी ब्लाउज)।

अन्य स्त्री-पुरुषों में विविध व्यवसाय-जाति और संस्कृति के अपने-अपने अनुकूल वेशधारी हैं। बालकों में विद्यार्थी, भिन्न-भिन्न कला और विज्ञान के चिन्हों सहित उपस्थित हैं। कृषक पकी हुई गेहूँकी बाल और कृषक-तरुणी दही की मटकी सिर पर लिये है। सबके हाथों में एक-एक तिरंगा राष्ट्र-ध्वज है।

मातृचित्र के बीचों-बीच रत्न-पीठ पर एक स्त्री भारत माता के रूपमें बैठी है। उसका परिधान तिरंगा है। एक हाथ में तीन सिंह वाला स्वर्ण-ध्वज है। दूसरे में अन्न की हरी-हरी बालें ह सिर पर श्वेत कमल का मुकुट है। भारत माता के एक ओर सिंह और दूसरे पार्श्व में श्वेत रंग की दुधारू गाय बैठी है।

समय प्रभात।

परदा उठते ही वीणा, मृदंग, सितार आदि विविध प्राच्य अर्वाचीन वर्तमान भारत में प्रचलित वाद्य मृदु मन्द ध्वनि से बजने लगते हैं। भैरवी के स्वरों में आलाप होता है और प्रत्येक लय पर बारी-बारी से दोनों पार्श्वों से सात प्रदेशों की सातों कुमारिकाएँ श्रद्धांजलि लिये आतीं और इस ढंग से खड़ी होती हैं कि अन्त में मध्यस्था बीच में सामने मुंह किये तथा तीन-तीन दोनों बगल में मुँह किये खड़ी हो जाती है। वाद्य के सम ताल पर उनके पद नृत्य करते हैं।]

(मध्यस्था 'अस्थाई' गाती है और दूसरी बालाएँ 'अन्तरा' में साथ देती हैं।)

जय-जय-जय-जय हे,
बा कस्तूर जयति जय,
जय-जय-जय-जय हे !

मन वैरागिनि, जन अनुरागिनि
परम तपस्विनि, अग्रारोहिनि
बापू की अनुगामिनि हे,

बा कस्तूर जयति जय,
जय-जय-जय-जय हे !

सीता प्रतिमा, तप परिणीता
मंगल मूरति, शुभ्र सुहासिनि
भरत-खंड ध्रुव स्वामिनि हे,

बा कस्तूर जयति जय,
जय-जय-जय-जय हे !

कुंकुम-मंडित, भाल अखण्डित
व्रीड़ा-लज्जित, धवल सुसज्जित
अभिनन्दित, आनन्दिनि हे,
बा कस्तूर जयति जय,
जय-जय-जय-जय हे !

तव चल अंचल, काल क्रमण कर
मुक्त प्रफुल्लित, भू पर नभ पर
तव अक्षय महिमा बा हे,
बा कस्तूर जयति जय,
जय-जय-जय-जय हे !

नियमित तन मन, संयत जीवन
सेवा तप धन, जन-मन-मोहिनि
मातृभूमि अनुमोदिनि हे,
बा कस्तूर जयति जय,
जय-जय-जय-जय हे !

धर्म धारिणी, खल-मल हारिणि,
सत्य अहिंसा, यज्ञ अरणि बा
जन मन दैन्य विनाशिनि हे,
बा कस्तूर जयति जय,
जय-जय-जय-जय हे !

जय-जय-जय-जय हे,
बा कस्तूर जयति जय,
जय-जय-जय-जय हे !

(पुष्पांजलि अर्पण करती है)

(पटोत्तोलन)

पहला अंक

[स्थान—शान्ति-निकेतन—समय संध्या-काल, सुहावनी ऋतु, पश्चिम में लाल-लाल बादलों में छनकर अस्तंगत सूर्य की किरणें गहरे हरे रंग के आम्र वृक्षों पर पड़कर उनमें लाली उत्पन्न कर रही हैं। कोयल कूक रही है, आम्र के बौरों की मधुर गन्ध वातावरण में व्याप्त है। सामने विश्व-कवि के भव्य धवल भवन की उज्ज्वल छवि फूलों से लदी हुई लताओं से आलिंगित अति मनोरम कविता मूर्ति-सी दीख रही है। विश्व-कवि हरे-भरे घास के लॉन पर पड़ी एक काष्ठ-पीठिका पर प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं। सामने नर्म घास पर युवक-युवतियाँ, छात्र और निकेतन के अध्यापकगण बैठे हैं, उन्हीं के बीच देश-विदेशों से आये हुए अतिथिगण हैं। विश्व-कवि के चरणों के निकट भूमि पर सांथुवर एण्ड्रूज बैठे हैं।]

एक अध्यापक

तो गुरुदेव, यदि विश्ववन्द्य गांधी जी निकेतन में पधारकर निकेतन-भूमि को आप्यायित किया चाहते हैं तो हमें निकेतन में उनका अपार्थिव सत्कार करना उचित है।

गुरुदेव

(मृदु हास्य से) अपार्थिव क्यों ?

अध्यापक

इसलिए गुरुदेव कि वे देवताओं के युग को फिर से भूलोक में प्रवर्तित कर रहे हैं। वे स्वयं अपार्थिव सत्व हैं।

गुरुदेव

देवताओं का युग तो बहुत पहले बीत चुका है। उस युग से अब तक मनुष्य ईश्वर की धारणात्मक शक्ति को पहचान लेने को व्याकुल रहा है उसे गांधी जी ने चिरन्तन सत्य के रूप में अपने जीवन के साथ आत्मसात् किया है इसी से गांधी जी के रूप में सत्य-धर्म और जीवन की वह पुरातन विधृति साकार हो उठी है।

अध्यापक

गुरुदेव, इस तथ्य की थोड़ी और भी व्याख्या कर दें, हमारी समझ में तो गांधी जी एक नये धर्म के प्रवर्तक हैं जिसमें समाज का नैतिक नियन्त्रण करने की सामर्थ्य है गांधी जी के इस नीति-धर्म का सहारा पाकर वह बिना ही किसी रक्षक के सब ईति-भीतियों से सुरक्षित रहेगा।

गुरुदेव

यह स्वाभाविक ही है कि लोग प्रत्येक तत्त्व को मानव-हित की दृष्टि से देखें। तो अब यदि गांधी जी के सत्य-शोधन पर विचार करते हुए हम मानव-इकाई के अभयत्ववाद, समाज की सुरक्षा एवं सुव्यवस्था की ओर आते हैं तो हमें गहराई से थोड़ा उथले में आना पड़ेगा, अर्थात् हम गम्भीर चिन्तन करते-करते जीवन की साधारण बातों पर विचार करने लगेंगे।

अध्यापक

परन्तु गुरुदेव, समाज का चिर जीवन जीवन की साधारण बात क्यों? सनातन ही तो मनुष्य-समाज के समृद्ध जीवन की कामना में बड़े-बड़े त्याग करता आया है।

गुरुदेव

परन्तु मनुष्य ने समाज के समृद्ध जीवन की तो कभी चेष्टा की ही नहीं। वह केवल अपनी समृद्धि ही चाहता रहा-तप में भी, त्याग में भी और विलास में भी। इसी का तो यह परिणाम हुआ कि समाज के खंड खंड हो गए, ऊपर ही से नहीं भीतर से भी। चाहे भौतिक अवस्था में लो, चाहे आध्यात्मिक अवस्था में, मनुष्य बाजी जीतने की दौड़ में पड़ गया। उसने सर्वत्र जय करना चाहा, पर बहुधा वह पराजित हुआ, इसी से तो युग युग में समाज के इतने रूप बदले गए, इतने संघर्षों को पार किया गया। वह एक चिरंतन सत्य को तो पा ही न सका।

अध्यापक

और यदि वह उस चिरन्तन सत्य को पा लेता ?

गुरुदेव

तो फिर वह स्थिर सत्व सत्य हो जाता। सब संघर्षों और परिवर्तनों एवं अस्थिर अवस्थाओं से परे। यह असत्य ही तो उसे चंचल बनाए हुए है, जिससे वह अभी तक अचल लक्ष्य नहीं हो पाया, सदैव ही तो वह जीवन में हारा है।

अध्यापक

और गांधीजी के रूप में वही अलभ्य सत्य मूर्त हुआ है गुरुदेव ?

गुरुदेव

यही बात है प्रिय बन्धु, अच्छा समाज ही की बात ले लो, छोड़ दो मानव को, जो विश्व की सबसे बड़ी इकाई है। क्या तुम सबसे अधिक यही एक बात नहीं विचारते कि समाज अब किसके बल पर स्थिर होगा ?

अध्यापक

निश्चय ही गुरुदेव, बड़े-बड़े विचारवान् विश्व में यही सोचने में व्यस्त हैं, विश्व की सबसे बड़ी राजनीति ही यह है।

गुरुदेव

तब देखो, एक युग था जब राजा लोग समाज का रक्षण करते थे। वह युग अब बीत गया, सत्ताधारी सामन्तों और सम्राटों में जो शक्ति निहित थी वह वहाँ से हटकर समाज में प्रविष्ट हो चुकी है। अब समाज की यह सम्पूर्ण सत्तामय शक्ति किस रूप में प्रकट होनी चाहिए? यदि इसका वही रूप हुआ जो सम्राटों और सामन्तों का था और युद्ध एवं रोष ही में उसका उपयोग हुआ तो समाज को एक ऐसे दुर्भाग्य का सामना आज करना पड़ेगा जिसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

अध्यापक

यह कैसे गुरुदेव?

गुरुदेव

युद्ध मानव-सम्पत्ति नहीं, पशु की प्रकृति है। फिर भी मानवता के बाल-काल से लेकर आज तक मानव-जीवन के विकास का महत्तर आधार युद्ध ही रहा है, युद्ध ही में मानव जाति की चरम शक्तियाँ निहित और केन्द्रित रही। यह भी कहा जा सकता है कि युद्ध ही ने जातियों का निर्माण किया है, संक्षेप में; हम युद्ध को मानव-जीवन और उसकी सम्पदा के विकास का आधार ही कह सकते हैं। वह अब तक की मानवीय सभ्यता का इतिहास है। युद्ध मानव की सबसे बड़ी सामर्थ्य है इसी से मानव अपने जीवन के शैशव-काल ही से युद्ध को अपने जीवन में लिप्त करता आया है। उसने युद्ध को इतना प्यार किया है कि आश्चर्यजनक उल्लास और वेग से उसने

अपने प्राण और प्राणाधिक पदार्थ युद्ध की भेंट किये हैं, और जिसने जितना अधिक यह किया है साहित्य ने अति पुरुष कह-कर उसका कीर्ति-गान किया है ।

अध्यापक

यह तो उसके वीरत्व की प्रतिष्ठा है गुरुदेव ?

गुरुदेव

वही तो मै कह रहा हूँ, युद्ध पुरुष की सम्पत्ति नहीं पशु की प्रकृति है । फिर किसलिए मनुष्य ने अपनी सम्पदा, प्राण और पौरुष इस युद्ध की भेंट किये है ? किसलिए मानुष की इस पशु वृत्ति की कविजनों ने प्रशंसा कर-करके मेदिनी को ध्वनित किया है ?

अध्यापक

किस लिए गुरुदेव ?

गुरुदेव

इसका एक ही सत्य और गम्भीरतम उत्तर है-वह यह कि मनुष्य कभी भी सम्पूर्ण मनुष्य नही हो पाया, वह पशुत्व से थोड़ा ही विकसित एक प्रगतिशील पशु रहा है । इसी से उसने अपने विकास की सारी ही प्रतिभा और प्रगति पशुत्व के इस महान् प्रतिनिधि युद्ध के विकास में व्यय की है ।

अध्यापक

और सम्भवत: अणु महास्त्र, इस दिशा में उसके चरम उद्योगों का एक नूतनतम परिणाम है ?

गुरुदेव

यदि ऐसा ही हो तो फिर कहना होगा कि वह मानव-मस्तिष्क में चिरधिष्ठित युद्ध-तत्त्व का पूर्ण विराम है ।

अध्यापक

यह कैसे गुरुदेव ?

गुरुदेव

ऐसे, कि इस महास्त्र के प्रादुर्भाव ने अब तक विकसित सम्पूर्ण युद्ध-कला को निरर्थक कर दिया है, अब मनुष्य के सम्मुख दो ही मार्ग हैं, या तो वह अपने अपूर्ण मानव तत्त्व को एक-बारगी ही त्यागकर सम्पूर्ण पशु बन जाय तथा इस, और इस-जैसे महास्त्रों से अपना सर्वतोभावेन विध्वंस कर ले। या अपने में व्याप्त पशुत्व को एकबारगी ही निकाल फेंके और 'पूर्ण पुरुष' होकर विश्व-सम्पदाओं का निर्भय भोग करे।

अध्यापक

(उत्तेजित होकर) तब तो उसे निश्चय ही दूसरा मार्ग चुनना होगा।

गुरुदेव

निश्चय। मानुष में जो रोष है वही पशुत्व का प्रतीक है, मानुष में मानुष का प्रतीक विचार है। वह जब तक विचार के आधीन रहता है, रोष सुप्त रहता है, परन्तु विचार-हीन होते ही वह रोषाभिभूत होकर जितना अधिक उसमें मानुष-तत्त्व है, उतना ही अधिक हिंस्र बन जाता है, क्योंकि उसकी विचार-सत्ता रोषावेष्टित हो जाती है।

अध्यापक

तो इससे क्या होता है ?

गुरुदेव

पशु जब रोषावेष्टित होकर युद्ध करता है तो वह अनिवार्य रूप से मृत्यु को वरण करता है। अल्प कारण से ही वह उस प्राणघाती मार्ग पर चल पड़ता है, क्योंकि वही उसकी प्रकृति

है। परन्तु मानुष ऐसा नहीं करता, वह रोषावेश में भी बलाबल-कारण और साधनों पर दृष्टि रखता है। पराजित होने पर वह रोष का दमन कर लेता है और फिर बदला लेने की योजना बनाता है यह सब कार्य वह उस विचार-सत्ता के द्वारा करता है जो वास्तव में उसके मानुष-तत्त्व का प्रतीक थी परन्तु रोषाधीन हो गई थी।

अध्यापक

बदला लेने की यह भावना तमोगुण-बहुला है।

गुरुदेव

इस भावना में वह प्रतिस्पर्द्धा की शक्ति के विषय में संदिग्ध रहता है। विज्ञान, ज्ञान और विचार उसके सहायक होते हैं।

अध्यापक

परन्तु अणु महास्त्र का मानव-मस्तिष्क पर बिलकुल ही नया प्रभाव पड़ा है। वह रोष को दबाने को नहीं, अपने में से दूर निकाल फेंकने की सोचने लगा है।

गुरुदेव

हाँ, और अब उसके 'पूर्ण पुरुष' होने का युग आ गया है। इस युग में वह सर्वथा रोष-हीन होकर विचार-सामर्थ्य से अपना संगठन करेगा। मानव-रोष की निस्सारता उसने देख ली है।

अध्यापक

और गांधी का चिरंतन सत्य ही उसे पूर्ण पुरुष बनायगा।

गुरुदेव

हाँ मित्र, मानव-समाज की सत्ता और शक्ति जिस रूप में अब पुनः प्रकट होगी, वह केवल उन नियमों के रूप में ही जो इस चिरन्तन सत्य पर आधारित हैं।

अध्यापक

तो यह धर्म-राज्य होगा ।

गुरुदेव

यदि पुरानी परिभाषा का हम उपयोग कर सकते तो इन धारणात्मक नियमों पर आधारित व्यवस्था को हम धर्म राज्य का नाम देते । परन्तु आधुनिक शब्दों में हम इस रचनात्मक तत्त्व को सत्य—चिरन्तन सत्य का नाम दे सकते हैं ।

अध्यापक

तो इस दृष्टि में गांधी जी केवल अपने क्षीणकाय गात्र में समाने वाले व्यक्ति ही नहीं हैं, वे विराट् पुरुष भी हैं ।

गुरुदेव

यह तो है ही । उनका सत्यात्मक तेज समाज के जिस अंग में छू गया है वही अंग सजीव हो उठा है । उस सत्य की एक किरण जहाँ-जहाँ पहुँची है वहाँ से शताब्दियों और सहस्राब्दियों का संचित प्रगाढ़ अन्धकार दूर होकर वहाँ उज्ज्वल आलोक छा गया है । उस सत्य के सम्मुख जाते ही मनुष्य के जन्म-जन्म के पाप-कलुष हट जाते हैं । देखते नहीं, दासता के बन्धनों से आबद्ध कोटि-कोटि नर-नारी इस विस्तृत भरत-खंड में उस सत्य से बल पाकर कैसे सजीव, चैतन्य और स्फूर्तिमय हो गए हैं । निराशा से सूखे और अभाव से निस्सहाय जन, आशा उत्साह और उमंग से फूल उठे हैं । गांधी जी कोटि-कोटि जन के सामूहिक जीवन को सत्य के रथ-चक्र में बाँधकर द्रुत गति से आनन्द-लोक की ओर उन्हें लिये जा रहे हैं । उस सत्य के रथ का घण्ट-घोष भारत की सीमाओं को पार कर, हिमांचल की उत्तुंग शिखाओं को उल्लंघन कर, समुद्र की लहरों पर थिरकता हुआ देश-देश में , विश्व के कोने-कोने में आपूरित हो गया है । थकित, शंकित, भीत और विमूढ़ विश्व-जन उस घोष को अपनी

आने वाली संतति के लिए अभय सन्देश समझ आनन्द-विभोर होकर सुन रहे है। तोपों की भयानक गर्जना से ऊपर, अणु-महास्त्र के महा विनाश से भी ऊपर यह गांधी के सत्य-रथ का घण्ट-घोष वे सुन रहे है। उसके सुनने-मात्र से घातक युद्ध से आहत, भूखा, नगा, भीत और असहाय विश्व का मनु-कुल आनन्द म मग्न हो रहा है।

अध्यापक

किन्तु गुरुदेव, सत्य का शोध तो पुरातन ऋषियों ने भी किया था। क्या यह नया सत्य उन सत्यों से पृथक् है ?

गुरुदेव

ऐसा ही है मित्र, आज का मनु-कुल प्रत्यक्ष जीवन का आश्रय लेकर ही आगे बढ़ रहा है। परोक्ष धर्म की पुराण-गाथाएँ अब भूल-भुलैयाँ की कहानियाँ-मात्र रह गई हैं। मानव ने अब समझा है कि उसका जीवन प्रत्यक्ष धर्म और सत्य पर आश्रित हुए बिना सदा अपूर्व रहेगा। इसलिए मनुष्य का मनुष्य के साथ, समाज का समाज के साथ जो एकता का सम्बन्ध है उसकी व्यावहारिक आधार-शिला केवल सत्य है, प्रत्यक्ष सत्य, चिरंतन सत्य। जिससे मानव चिर काल से बिछुड़ गया है।

अध्यापक

गांधी जी इसी बिछुडे हुए सत्य को कोटि-कोटि मानव-जन-जीवन से मिला रहे हैं ?

गुरुदेव

यही गांधी जी का ध्रुव ध्येय है। ज्ञान, कर्म, धर्म, धन—गांधी जी कहते हैं—तथा विविध व्यापार सब सत्य के बिना निष्प्राण हैं। ये वस्तुएँ हमारे पास थीं, पर उनका अन्तर्यामी सूत्र सत्य खो गया था उसे यत्न से ढूंढकर गांधी जी ने उसी सत्य

सूत्र में ज्ञान-कर्म-धर्म-धन, और विविध जीवन-व्यापार को पिरो दिया है। इसी से गांधी जी सत्य की भाँति विश्व रूप हैं।

अध्यापक

इसी से गुरुदेव, उनकी संपूर्ण महिमा बुद्धि में एक साथ नहीं समाती।

गुरुदेव

कैसे समा सकती है बन्धु, हम सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के सत्य को जितना अधिक अनुभव करने योग्य बनेंगे, उतना ही तो सत्य रूप को जान सकेंगे? यदि हम अपने जीवन में सत्य को ही एक-मात्र आराध्य देवता मान लें तो गांधी जी के गौरव और उनकी महिमा को हम जान लेंगे।

अध्यापक

तो गुरुदेव, हम प्रतिज्ञा करें कि सत्य ही हमारा आराध्य देव है, और सत्य के देवता के प्रतीक गांधी सत्यालोक लेकर हमारे निकट आ रहे हैं, हम उस सत्य को अपने जीवन में ओत-प्रोत करेंगे सत्य हमारा जीवन और सत्य ही हमारी पूजा होगी।

गुरुदेव

ऐसा ही होना चाहिए, तुम सत्य को खोजो तो देखोगे कि जीवन एक सीधी रेखा नहीं—वृत्त है।

अध्यापक

गांधी जी का सत्य कवि के काव्य से भी कहीं समता रखता है?

गुरुदेव

(हँसकर) क्यों नहीं। गांधी जी कर्तव्य के पुजारी हैं और कवि सौंदर्य का। गांधी जी चर्खे पर लय साधते हैं तो कवि गीत की तान छेड़ता है। एक आहत मानव का उपचार करता है

दूसरा उसकी आत्मा को प्रमुदित करता है। एक कमल में वज्र की बात सोचता है, दूसरा वज्र में कमल की। एक के लिए विश्व कार्यालय है, दूसरे के लिए विहार-वाटिका। एक कर्म को आनन्द-पूर्ण बना रहा है दूसरा आनन्द की सृष्टि को कर्म में आरोपित कर रहा है। एक निजी समस्या को विश्व-समस्या समझता है, दूसरा विश्व-समस्या को निजी समस्या। एक वह शिल्पी है जो एक संगमरमर के टुकड़े की खोज में है और दूसरा अपनी प्रेमिका के अभिसार के पथ पर है। दोनों जीवन का आलिंगन कर रहे हैं, एक दासी के रूप में, दूसरा प्रेयसी के रूप में।

अध्यापक

और दोनों में श्रेष्ठ कौन है ?

गुरुदेव

गान्धी, सत्तर वर्ष के अपने जीवन के सिंहावलोकन में—क्या किसी और भी दूसरे जीवित पुरुष ने अपने इतने महान् कार्यों के परिणाम देखे ? उन्होंने एक विराट् राष्ट्र की आत्मा का उत्थान किया और उसकी गौरव-वृद्धि में उसका नेतृत्व किया। वे आज और कल की दुनिया को यह दिखाने में प्रयत्नशील हैं कि सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र में केवल मानव-आत्मा की शक्ति-मात्र से पाशविक शक्ति का आश्रय लिये बिना बड़े-बड़े शुभ परिणाम निकाले जा सकते हैं।

अध्यापक

यही संभवतः उनका अन्याय-पीड़ितों की सदैव से चली आ रही पतितावस्था से उद्धार करने का मार्ग है।

गुरुदेव

यही, इसी ने तो उन्हें विरोधियों का सदय बन्धु बनाया। गतिहीनों का आश्रयदाता बनाया, दलितों का वरदाता बनाया, उनके बाह्य में हमारे वर्तमान का अन्तर्मार्ग है, और अन्तस्तल

में हमारा अतीत है। अन्तर्यामी ऐक्य के साथ उन्होंने योग किया। इसी से वे लोगों के जीवन में अन्तगत ऐक्य की निष्ठा जगा रहे हैं। वे योगयुक्त हैं।

अध्यापक

यही वह तत्त्व है जिसे 'कर्मयोग' कहते है ?

गुरुदेव

न, गांधी कर्म या विचार के साधक नहीं है, जीवन के साधक हैं, इसी से वे आज संपूर्ण भाव में 'कालपुरुष' हैं।

अध्यापक

किन्तु क्या हमने उनको पहचाना है ? हमने कदाचित् इस पहार्घ रत्न को अनायास ही पा लिया है ।

गुरुदेव

वेद की वाणी है--अति सतं न जहाति, अति संतं न पश्यति। इसका अभिप्राय यह है कि हम अपने समीप की महत् वस्तु को, जब तक उसे खो न बैठें, नही पहचानते। 'आविः सन्निहितं गुहा', जो नेत्र के अति निकट है, वह अदृश्य है।

अध्यापक

यह अति दारुण सत्य है ।

गुरुदेव

परन्तु तुम जानते हो यह कितना अनिवार्य है। किसी वस्तु का वजन जानने के लिए उसके अभाव से उत्पन्न शून्यता का सहारा लेना पड़ता है ।

अध्यापक

इस वैज्ञानिक सिद्धान्त को कहते हैं 'डिस्प्लेसमेंट'; पर वह क्या मानव-गरिमा पर भी लागू है ?

गुरुदेव

(हँसकर) क्यों ? मानव क्या भौतिक नहीं है ?

अध्यापक

यही उनके मानव-प्रेम का मूलाधार है ?

गुरुदेव

यही है, जो आर्य-परम्परा से अनुबन्धित है। 'सवर चांडाल कपि ऋक्ष राक्षस' के साथ योग-स्थापन के लिए राम, 'किरात हूणान्ध्र पुलिन्द पुक्कस' के आह्वान के लिए कृष्ण, और आर्य-अनार्य आदि के लिए बुद्ध ख्यात हैं। इन सब महा मानवों ने मनुष्य ही को बड़ा जाना और माना है। वैदिक ऋषि कहते हैं--'ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम्' जो मनुष्य के भीतर ब्रह्म दर्शन करता है वही परमेष्ठि है। उपनिषद् कहते हैं--'पुरुषान्न परम किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः।' मनुष्य का महत्त्व आँखों से नही, अन्तर से प्रत्यक्ष होता है, भीष्म ने कहा है--'न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि कश्चित' मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ नही है। मनुष्य ही कर्म है।

अध्यापक

किन्तु मैं लोक-ताप की पीड़ा की बात सोचता हूँ।

गुरुदेव

लोक-ताप की पीड़ा तप से ही प्राप्त होती है। वह परमात्मा की सबसे बड़ी आराधना है। तान्त्रिक कहते हैं--'रागेण बध्यते जन्तुः रागेणैव प्रमुच्यते; राम-लगाव ही से बन्धन और उसी से मुक्ति होती है। यही राग 'अप्रतिरोध प्रेम' है।

अध्यापक

और उसी 'अप्रतिरोध प्रेम' ने गांधी जी के मन में लोक-ताप की पीड़ा को जन्म दिया है।

गुरुदेव

यही बात है। इसी से भारतीय इतिहास में जो श्रेय और सौभाग्य किसी एक व्यक्ति के हिस्से में नहीं आया वह आज गांधी को प्राप्त है। जितने अधिक रुँधे हुए मार्गों को उन्होंने साफ किया,वह लोकोत्तर है। आज का हमारा युग गान्धीजी की ही देन है। गान्धी जी आदर्श और प्रकाश के रूप में हमारे सम्मुख हैं, उनका प्रभाव कोलाहल में संगीत का स्वर साधता है। बुराई से भलाई का विकास करता है, जड़ को चेतन और संघर्ष को सहयोग दान देता है। विभक्त मानव को संयुक्त करना उनका ध्रुव ध्येय है। वह दुनिया का भविष्य बदल-कर ही रहेगा।

अध्यापक

तो आज हम उन्हीं का गुण-गान करें

गुरुदेव

गाओ फिर।

गान्धि महाराजेर शिष्य,
केउ बाघनी केउ बा निःस्व,
एक जायगाय आछे भो देर मिल,
गरिब मेरे भराई ने पेट,
अमीर काँछे हइते तो हेंट,
आत के मुख हयना कभु नील।
पण्डा जखन आसे तेड़े,
ऊँचिये घुषि डाण्डा तेड़े,
आमरा ह से बलि जो पान टाँके,
रजे तोमार चोख राँगानो,
खोका बाबूर घूम माँगानो,

मयन पेले मय देखावे काके ।
सिधे भाषाय बलि कथा,
स्वच्छ ताहार सरलता,
डिप्लमैसिर नाहि को असुबिधे,
गारद खानार आइनय के,
खूंजते हय ना कयार पाके,
जेलेर द्वारे जायसे निए सिधे ।
दले दले हरिण बाडि,
चलत जारागृह छाड़ि,
छू चल ताहर अपमानेर शाप,
चिर कालेर हात कडि जे,
घू लाय खसे पड़ल निजे,
लागल भाले गान्धी राजेर छाप ।[१]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

दूसरा अंक

[नोआखाली का एक गाँव, एक अधजली तिमंजिली हवेली, जिसमें केवल तीसरी मंजिल पर एक छोटी-सी अट्टालिका जलने से बच रही है। उसके द्वार पर आम्र के पत्तों का बन्दनवार झुलस गया है। परन्तु दीवारों पर चित्रित शोभायमान रंगीन चित्र नष्ट नहीं हुए हैं। गाँव में एकाध वृद्ध पुरुष सुस्त और निराश भाव से धीरे-धीरे जाता-आता दीख जाता है। जगह-जगह राख, मलबा, खंडहर, और अधजली लाशें दीख पड़ रही हैं।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ और विनयधर आते हैं। खान का लम्बा कद, श्वेत छोटी-छोटी दाढ़ी-मूंछ, लम्बा कुरता और पाजामा, पेशावरी चप्पल, नंगा सिर, कंधे पर खद्दर का दुपट्टा।

विनय-बंगाली युवक, आयु २६ वर्ष, तपाये स्वर्ण-सा रंग, कसरती सुगठित शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें, बंगाली धोती और कुर्ता, पैरों में पम्प शू, बिखरे बाल, सूखे होंठ, और कृश शरीर।]

विनयधर

लीजिए, आखिर हम इस स्थान पर आ पहुँचे। यही वह अटारी है जो आग की लपटों से बच गई है, मेरे दग्ध नेत्रों को शीतल करने के लिए। इसे देखकर मैं अतीत के सुख की अनुभूति पाता हूँ। वह उधर मेरा आम्र-निकुज था। वहीं, उस बड़े आम्र वृक्ष की छाया में बैठकर मैं अनेक सुख-स्वप्नों की सृष्टि किया करता था। यह वह पुष्करिणी है, आज उसका जल सूख गया है, कभी वह उज्ज्वल मोती के समान जल से आपूरित

रहती थी। गाँव की कुल वधुएँ यहाँ अपनी रंगीन साड़ियों के घूँघट में स्वर्ण हास्य बखेरतीं, मृदु स्वर से गीत गातीं, जल भरतीं, जल-पूरित गगरी कोमल भाव से कमर में लगाए घर लौटतीं। यहीं प्रौढाएँ सखियों पर व्यंग करतीं, विनोद की उमंग में हँसती थीं। आज वे सब राख के ढेर में जली पड़ी हैं। वह उनकी हड्डियाँ बिखरी पड़ीं हैं। यह देखिये किसी सौभाग्यवती की कलाई की अस्थि दीख पड़ती है। आग से पिघलकर काँच की चूड़ी उसके हाथ से चिपक गई है। यह किसी कुलवधू की चुनरी का टुकड़ा प्रतीत होता है, जलने से बच गया है। केले के वे सब पेड़ झुलसकर झुक गए है, बड़े मधुर सुनहरी केले इन पर आते थे। बहुत बार वह मैंने मित्रों को भेंट किये हैं। उस सुदूरवर्तिनी घाटी के उस ओर आकाश की दिशा में वे उन्नत पर्वत-शृङ्ग हमारे इस गाँव के सभी मनोरम चित्रों का साक्षी रहा है। वह हरित वर्णी पर्वत-शृङ्ग आज उस निस्पृह भाव से उस बड़ी अट्टालिका से उठते हुए धुएँ को देख रहा है। जैसे वह हमारे रसोईघरों से उठते हुए धुएँ को देखता था। उधर उस घर की आग तो अभी भी बुझी नहीं है। राख से ढकी वह गुल्लाला के फूल-सी दीख रही है।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

देख रहा हूँ सब। यह सब उस दृश्य से कम प्रभावशाली नही हे जब मैंने यहाँ तुम्हारे घर के उस आँगन में, जहाँ अधजले छप्पर का फूस और बाँस पड़े हैं, तुम्हारी गोपा गाय का दूध पिया था। और सुगन्धित स्वादिष्ट आम खाए थे। उसका वह बछड़ा कैसा प्यारा था ?

विनयधर

वह गोपा और उसका वह प्यारा बछड़ा भी उसी छप्पर के नीचे दबे पड़े हैं। जलते हुए मैंने उन दोनों का आर्त्तनाद सुना था, परन्तु उस समय मैं रस्सियों से उस खम्भे से बँधा था। वे मुझे डरा-धमकाकर मेरा गुप्त धन पूछ रहे थे।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

बताया तुमने ?

विनयधर

नहीं, उन्होंने मेरे दो वर्ष के पुत्र के तीन खंड करके मेरे ऊपर फेंक दिए। तब भी नहीं, और मेरी वृद्धा माता को जीवित आग में झोंक दिया तब भी नहीं। आप ही ने तो मुझे सिखाया था कि भय से भय नहीं करना चाहिए, सो वही मैंने किया।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

तुम कुछ दिन मेरे प्रिय शिष्य रहे, परन्तु आज तुम्हारा धैर्य देखकर अपनी गुरुता पर मैं लज्जित हो रहा हूँ। तुम्हारे ही प्रिय व्यक्तित्व में मैंने संपूर्ण पीड़ित नोआखाली को अपने मानस-नेत्रों से देखा, उसे देखते ही मैं स्थिर न रह सका, मैं चला आया।

विनयधर

नाहक आप आये। इस दंगाई, भद्दे, निकम्मे, गंदे आदमियों के देश में।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

ऐसा ही पठानों को भी लोग कहते हैं, जहाँ मैं पला हूँ और जिनका लहू मेरी नसों में है। फिर तुम जहाँ हो, वहाँ सब अभावों की पूर्ति है। सब सुषमाओं का संपूर्ण दर्शन है, सब सुखों की अनायास उपलब्धि है। मैंने तुम्हें बहुत कम देखा है पर तुम्हारी चर्चा बहुत बार रहमत ने की है।

विनयधर

रहमत ने मुझे बताया था। अभी पिछले सप्ताह ही में तो वह मेरा प्रिय अतिथि रहा है। उसी आम्र-निकुंज में बैठकर हमने ठहाके लगाये थे। माधुरी को हम लोग काफी खिझाते थे, उसकी बनाई चाय की वह सराहना करता था और मैं दोष निकालता

था। और दही के झोल की केले की तरकारी····खैर जाने दीजिए वह बात, इन बीती बातों से अब क्या ?

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

वह अब आता ही होगा।

विनयधर

कौन ? रहमत ? क्या वह अभी यहीं है ?

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

तुम्हें नहीं मालूम ? उसी ने तो मुझे यहाँ इतनी जल्दी आने को विवश किया। तुम्हें मैंने लिखा ही था कि इधर वह बहुत बीमार हो गया था।

विनयधर

इसी से मैंने आपसे अनुरोध किया था कि अभी न आयँ। हम लोग आतिथ्य करने के योग्य भी तो न रहे ?

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

चलते-चलते तुम्हारा पत्र मिला था। पर प्रत्येक श्वास पर तकलीफ हो रही थी। मैं जल्द-से-जल्द तुम्हें और माधुरी को देखने को व्याकुल हो उठा।

विनयधर

माधुरी को ? मेरी माधुरी को ? उसे तो अब आप नहीं देख सकेंगे, शायद शायद (कंठ अवरुद्ध होने से अटक-कर) वे उसे अपहरण कर ले गए, शायद उसने जान दे दी हो। जब उन्होंने मेरे अशोक का वध करके उसके तीन टुकड़े कर मेरे मुँह पर फेंके तभी; उस दृश्य को देखकर वह एक चीख मारकर मूर्च्छित हो गई थी।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

ठीक है, खुदा ने जिसे आनन्द ही भोगने को बनाया है, उसे ऐसा दुःख उठाना पड़ा। परन्तु, उसने वीरता से आपका

सामना किया है, और वह अपने दु:ख को बहुत-कुछ हल्का कर चुकी है। जब उसने सुना कि तुम स्वस्थ और सलामत हो, तब से वह बहुत शान्त है, सुखी है।

विनयधर

क्या माधुरी ? क्या वह जीवित है ? आपने उसे देखा है ?

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

मुझे देखते ही वह रोना भूल गई। उसे मुस्कराना पड़ा। उसने वैसी ही चपल बालिका की तरह मेरे लिए चाय बनाई, पिछली सब बातें जैसे वह भूल गई है, उसने सब सह लिया है।

विनयधर

वह है कहाँ ?

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

पास ही में, (बाँह खींचकर) उधर देखो—वह कौन गाँव है ऊँची टेकरी पर, अमराई के उस ओर ?

विनयधर

हरिपुर, वहाँ उसकी मौसी रहती है, वह तो वहाँ बहुधा जाती रहती थी।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

ठीक है, वही घर है न, जो उस टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी के उस छोर पर घने वृक्षों के बीच सफेद-सफेद दीख रहा है।

विनयधर

वही है।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

चौड़े बरांडे के बाद खुला सहन है, छप्परों पर कद्दू की बेलें चढ़ी हैं।

विनयधर

हाँ, हाँ, वही मौसी का घर है।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

वह वहीं है। कल रात उसे बुखार हो आया था। पर अब अच्छी है।

विनयधर

तो आप उससे मिले हैं? आपने उन्हें कब देखा है?

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

अभी दो घंटे पूर्व, तुम जानते हो, ऐसी शोभा और शील की प्रतिमा माधुरी-जैसी लडकियाँ मुझे बहुत प्रिय हैं। वह आकाश से उतरकर केले के नवीन पत्ते पर स्थिर अमल धवल ओस की एक विन्दु के समान तरल और कोमल बालिका है। उषा के आलोक की प्रथम किरण के समान उसका हास्य है, दमकते हीरे के समान उसकी आँखें हैं, नीलमणि के ढेर की भाँति उसके उन्मुक्त कुन्तल केश हैं। वह कैसी प्रियदर्शिनी है। और मुझ बूढ़े निरीह बालक को देखकर उसका रोम-रोम जब हँसने लगता है, तब मैं सुख में डूब जाता हूँ। वह अब आती ही होगी।

विनयधर

वह यहाँ आ रही है? क्या उसें मालूम है कि मैं यहाँ हूँ?

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

क्यों नहीं, जब उसने तुम्हारा सकुशल यहाँ आना सुना, तो एक हल्की जूड़ी-सी उसे चढ़ आई। मैं शंकित हुआ कि कहीं वह फिर बीमार न हो जाय, पर तभी वह मेरी ओर मधुरता से देखकर मुस्करा दी। बस मैं निश्चिन्त हो गया।

विनयधर

तो, तो आप उसे साथ ही क्यों नहीं लाए ?

खान अब्दुलगफ्फार खाँ

मैंने ही उसे रोक दिया, कहा—विनय के लिए कुछ अच्छे खाने बना ले आओ। वह पक्वान्न बनाने में जुट गई। रहमत दो मछलियाँ ले आया था, वह हँसकर कह रही थी, तुम्हें तली हुई मछलियाँ बहुत पसंद हैं, और झोलदार केले की तरकारी।

विनयधर

ठीक है। परन्तु

खान अब्दुलगफ्फार खाँ

रहमत भी उसके साथ है, और मौसी भी आ रही है।

(पालकी आती है)

वह आ गई, तुम्हारे नेत्रों का मंजु प्रकाश और मेरे हृदय को आनन्द से भर देने वाला सस्मित हास्य

विनयधर

(आगे बढ़कर) वह रही, वह

(माधुरी पालकी से उतरती है। जूड़ा बँधा, उसमें ताजे फूल, हल्की धानी साड़ी, कानों में रिंग, पैरों में महावर।

रहमत और मौसी बहुत-सी खाने-पीने की सामग्री पालकी से उतारते हैं। विनय कुछ देर जड़वत् खड़ा रहकर स्वप्निल से स्वर में—)

कौन ? प्रभात की भाँति कोमल और उज्ज्वल यह कौन ? हाँ, हाँ, माधुरी ही है, देख तो रहा हूँ। जीवन को बिखेरती चली आ रही है। रक्त और आग से अभिशप्त इस भूमि पर अवश्य फिर जीवन के हरे-हरे खेत लहरायँगे।

(आगे बढ़कर) वह लौट आयगी, इस सौभाग्य के लिए मैं तैयार न था।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

(कंधे पर हाथ धरके) तुमने वह आनन्द का मोती देखा नहीं ?

विनयधर

कहाँ ?

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

उसकी आँखों में। मैं तो उसका मूल्य ही न आँक सका, पर देखूँ, क्या-क्या लाई है ?

(सब लोग निकट आते हैं)

माधुरी

(सहज भाव से विनय के पास आकर) तुमने सुना, वे आ रहे हैं ?

विनयधर

कौन ?

माधुरी

बापू !

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

किसने कहा ?

माधुरी

अभी बहुत आदमी गाँव में आये हैं। वे यहीं आ रहे हैं। शायद आपके लिए कुछ संदेश भी है, कोई यहाँ भी आता ही होगा।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

ठीक है। पर विनय, यहाँ धूप आ रही है। वहाँ चलें, उस आम्र-निकुंज में।

विनयधर

चलिए, वहाँ अभी तक घास तो है। बैठने भर को जगह हो जायगी।

रहमत

एक मिनिट ठहरिए, मैं अभी वहाँ सब ठीक-ठाक किये देता हूं।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

क्या-क्या बनाया ?

(जाता है)

माधुरी

(लजाकर मुस्कराती हुई) यों ही कुछ, समय ही कहाँ मिला।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

मेरे लिए भी कुछ है, या सब विनय के ही लिए।

माधुरी

सब आपके लिए। जो बचेगा उसमें और लोग।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

(हँसकर) ठीक है, विनय, कहीं तुम घाटे में न रह जाओ।

विनयधर

आपके रहते दादा ! (आगे बढ़कर मौसी के पैर छूकर) मौसी, अच्छी तो रही ?

मौसी,

इसी से पूछो, मधु से। अठवाड़े भर एकदम गुम-सुम रहो। जैसे मिट्टी का ढेला-न खाना, न पीना, न बोलना। कितना सहना पड़ा। आज मेरा व्रत सफल हुआ।

विनयधर

मौसी, यह तुम्हारा मूर्त आशीर्वाद है।

मौसी

और मेरे पास क्या है भैया, परन्तु मधु, तू तनिक न हो तो उस अटारी में जाकर लेट, ठहर मैं ठीक किये देती हूँ।

(जाना चाहती है)

माधुरी

नहीं मौसी।

मौसी

(रुककर) चुप रह, रात बुखार था, और आज प्रहर रात से ही पक्वान्न बनाती रही। अब बीमार न पडने दूँगी।

(जाती है)

माधुरी

दादा, बापू आ रहे हैं, आगे चलकर अगवानी न की जाय।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

पहले मौसी की बात सुन। देखूं रहमत ने क्या ठीक-ठाक किया है।

(जाते हैं)

विनयधर

बैठो माधुरी, (दोनों बैठते हैं) क्या बहुत रोना पड़ा ?

माधुरी

(मुस्कराकर) कहाँ ?

विनयधर

सब बाल सफेद हो गए, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं, और कमर झुक गई। इतने ही दिनों में बुढिया हो गई मधु !

माधुरी

हटो ।

विनयधर

पर वह आँसू ?

माधुरी

कहाँ ?

विनयधर

दादा ने दख लिया मधु, दादा कहते थे—

माधुरी

दादा क्या कहते थे ?

विनयधर

कहते थे, वह आनन्द का मोती है, उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता ।

माधुरी

और तुम क्या कहते हो ?

विनयधर

ओह, बड़े-से-बड़े प्यार का मूल्य भी इस आँस की एक बूँद के बराबर नहीं ।

माधुरी

पर जो प्यार आँसू गिराए, वह प्यार क्या ?

विनयधर

परन्तु मधु, अब तक हम मिथ्या में थे, अब सत्य में हैं।

माधुरी

मैं तो पिछले अठवाड़े ही से सत्य में रही।

विनयधर

तो मधु तुमने सत्य का खूब लाभ उठाया।

माधुरी

हाँ, और वह लाभ अब मैं सबको बाँटूँगी।

विनयधर

तो दुःख से झगड़ती हुई मर्माहत आत्मा ने अपने को पहचान और पा लिया है?

माधुरी

सचमुच ऐसा ही है।

विनयधर

ठीक है जिस प्रेम और सौंदर्य ने यह अनिन्द्य सुन्दर मूर्ति गढ़ी है, उसी के विलास-क्रीड़ा के लिए आज का प्रभात उदय हुआ है।

माधुरी

किन्तु हमारा अशोक· ····

(आँसू गिराती है)

विनयधर

अब अशोक की बात क्या? वह शोक तो आठ दिन का पुराना हो गया।

माधुरी

पुराना घाव कितना दुःख देता है, जानते हो?

विनयधर

जानता हू.। इसी से तो चिकित्सक आया है, घर-घर घूम कर, पुराने घावों को अच्छा करने। वह पाँव प्यादा हमारी भूमि को नाप रहा है ।

माधुरी

रक्त और अग्नि से अभिशप्त भूमि को ।

विनयधर

मनुष्य का ज्ञान उसे मृत्यु और शोक के विरोध में राह दिखाता है, हमें अशोक के पाने का हर्ष है, खोने का शोक नहीं। अशोक हमारा था, वह न रहा तो न सही। हम अतीत के लाभों और सौभाग्यों की अवमानना क्यों करें ? मधु, अशोक के साथ अशोक के प्यार को भी हमें नहीं भुला देना चाहिए ।

माधुरी

प्यार कैसे भुलाया जा सकता है ?

विनयधर

तो मधु, जहाँ प्यार है, वहाँ शोक का क्या काम ? प्यार में तो आनन्द-ही-आनन्द है ।

माधुरी

कैसे आश्चर्य की बात है, ठीक आवश्यकता के क्षण में ही हम ज्ञान को भूल जाते हैं ।

विनयधर

पर, जिन्हें हम प्यार करते हैं, जब मौत हमसे उनका बिछोह करा देती है, उसके बाद भी उनका बहुत-कुछ हमारे पास बच रहता है ।

माधुरी

अतीत स्मृति ।

विनयधर

तो अतीत से अधिक विश्वसनीय और क्या है ? आगे आने वाले दुःख-सुख को अन्ततः कभी अतीत बनना पड़ेगा। फिर उस आपत्ति पर शोक करना क्या ? जो एक व्यक्ति पर गिरी, और कभी-न-कभी सभी पर गिरती है। फिर मृत्यु शोक ! मधु, हम सब एक अन्त से बँधे हैं, और उसी की ओर बढ़ रहे हैं। उनमें—जो जा चुके, और हममें—जो जाने वाले हैं, एक दूसरे से—चाहे वह हमें कितना ही बड़ा लगे—पर अधिक अन्तर नहीं है। जिसे तुमने मृत समझ लिया —वह तुमसे जरा आगे चला गया है। बस, उसके लिए आँसू क्यों ?

माधुरी

पर तुम्हारी इन बातों से मुझे सान्त्वना नहीं मिलती।

विनयधर

वह दृश्य ही ऐसा था जिसे एक स्त्री की आँख अपने जीवन के वसन्त में नहीं सह सकती। पर मधु, यह तुम्हारी श्रद्धा-शक्ति और प्रेम की पराकाष्ठा का प्रदर्शन था, इसी से मुझे तुम्हारी उपस्थिति आज सान्त्वना दे रही है और तुम्हारी मुस्कराहट धीरज।

माधुरी

और दादा,

विनयधर

ओह, उन्होंने जो कुछ दिया है, वह जीवन ही नहीं, उससे अधिक है।

माधुरी

हाँ, और मैंने अपने को प्राप्त कर लिया। मैंने बड़े क्षोभ से एक-एक करके वे घड़ियाँ गिनीं, जो मुझे वहाँ व्यतीत करनी

पड़ीं, फिर मैंने अपने भीतर जन्म लेते हुए अपने नए जीवन के दर्शन किये। और तब मुझे मालूम हुआ कि मृत्यु मर गई, वह जीवित नहीं है।

विनयधर

तो तुम मुझसे अधिक लाभ में रही।

(मौसी आती है)

मौसी

चलो मधु, अटारी ठीक हो गई है, तनिक विश्राम कर लो।

माधुरी

नहीं मौसी, वहाँ अमराई में चलकर बैठें, चलो सब कोई।

(आगे-आगे माधुरी, पीछे मौसी और उसके पीछे विनय चलते हैं। खान अब्दुल गफ्फार खाँ मुस्कराकर देख रहे हैं। एक सघन आम्र-वृक्ष की डाली पर बैठकर रहमत गा रहा है)

बहने दे, माँझी !
भरी नदी है तो क्या, भय है,
प्रतिकूल पवन है, होने दे--
बहने दे, माँझी !
नाव चाव से बहा,
भँवर मनमानी करती हैं, करने दे--
बहने दे, माँझी !
मेघों को गर्जन करने दे,
आँधी की चिन्ता मत कर, लहरों पर चलने दे,
बहने दे, माँझी !
कूल किनारे भग्न हुए,
पतवार हाथ में नहीं, अभय हो निर्भर रहने दे।
बहने दे, माँझी !

तीसरा अंक

[नोआखाली के एक गाँव का किनारा। हमीद जुलाहा, याकूब भिश्ती, शकूर कसाई, अब्दुल मजीद दर्जी, शहाबुद्दीन जमींदार और नश्तर कवि। आग के चारों ओर पताई पर बैठे बातें कर रहे हैं। हमीद सत्तर वर्ष का बूढ़ा दुबला-पतला आदमी है। छोटी-सी दाढ़ी, आँखों पर मोटा चश्मा, कद लंबा, रंग काला, हर एक चीज को शक से देखता है। याकूब भरा जवान, ठिगना, मोटा, गरदन लापता, स्याह रंग, तहमद बाँधे, नीमास्तीन पहने, आँखों में सुरमा, पतली मूँछें। शकूर दुबला-सा कमजोर भद्दा आदमी ठिगना, कमर झुकी, नेत्रों में क्रूरता, पतले होंठ, गालों की हड्डी उभरी हुई। अब्दुल मजीद, लम्बा बंगाली कुर्ता और पाजामा, आँखों पर चश्मा, खिचड़ी दाढ़ी, नश्तर, शेरवानी पाजामा, बड़े-बड़े बाल, खूब बड़ा रंगीन चश्मा। शहाबुद्दीन, मोटा-ताजा, जवान खूबसूरत ३५ वर्ष का जवान। रात का समय।]

शकूर

सुना तुमने, वह आया है यहाँ।

हमीद

कौन ?

शकूर

जिसका जिक्र हम हफ्तों से कर रहे हैं वही।

हमीद

उसके आने का मतलब ?

शकूर

वह घर-घर घूमेगा, हर एक से बात करेगा ।

हमीद

हर एक से ?

शकूर

जी हाँ, ख़रामा-ख़रामा एक गाँव से दूसरे गाँव, एक घर से दूसरे घर ।

याकूब

लेकिन इसका मतलब क्या ?

शकूर

मतलब वह खुले-आम सबको बताता है । जाकर सुनो ।

याकूब

क्या वह अकेला है ?

शकूर

नहीं, उसके साथ सैकड़ों चेले-चाटे हैं, भीड़ लगी रहती है उसके पीछे, वह जहाँ जाता है मेला लग जाता है, जहाँ ठहरता है त्योहार मनाया जाता है ।

हमीद

क्या वह हिन्दुओं ही से मिलता है ?

शकूर

नहीं, हिन्दू-मुसलमान में वह भेद नहीं मानता है । वह कहता है हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई हैं ।

याकूब

बड़ा चालाक है, अपनी बुराइयों को भलाइयों के रूप में दिखाना खूब जानता है मालूम होता है ।

हमीद

लेकिन ये सैकड़ों जानवर घर-घर, द्वार-द्वार क्यों घूम रहे हैं ? हम यह बर्दाश्त नहीं कर सकते ।

याकूब

क्या उसे हमारा कुछ भी डर नहीं है ?

शकूर

नहीं, जिस बात से दुनिया डरती है, उसे देखकर वह हँस देता है

याकूब

उसे सरकार गिरफ्तार क्यों नही कर लेती ?

शकूर

गिरफ्तारी से उसकी कुछ भी हानि नही होती ।

हमीद

क्यों ?

शकूर

जो प्रभाव उसकी हाजिरी और मिलने-जुलने का नहीं होता, वह उसकी गिरफ्तारी का होता है । लोगों को उसका जुनून चढ़ा है, वे उसके पीछे पागल और गधे बन गए हैं ।

याकूब

इन गधों में हमारे भी कुछ लोग हैं ?

शकूर

कुछ ? अजी बहुत ।

हमीद

लेकिन किसी ने अभी तक उसे देखा तो नहीं है न ?

शहाबुद्दीन

मंने देखा है। दो-तीन दिन से वह मेरी ही जमींदारी के गाँवों में घूम रहा है। और मैंने उसकी बातें भी सुनी हैं। बात तो वह पते की कहता है। वह जो चौमुँहानी से कच्ची सड़क आती है, उसी पर वह चलता है। धूल और गन्दगी से भरे बहुत लोग उसके साथ हैं। वे सब जैसे उस जादूगर के जादू से मोहित हैं।

हमीद

लेकिन वह कहता क्या है ?

शहाबुद्दीन

वह कहता है—मैं मरने की रीति सिखाता हूँ। जब तुम मरो तो गुस्से से उबलते हुए मत मरो, ठंडे दिल से मुस्कराते हुए। मारने वाले को माफ कर दो, उसे अपना प्यार देते जाओ।

हमीद

वाह, यह कैसी बात है ?

शहाबुद्दीन

वह कहता है, चाहे जो हो, पुलिस और फौज की मदद मत माँगो, यह गलती है, कायरता है, जो लोग गड़बड़ मचने पर रोते हैं, वे गुलाम हैं, जो फौज की मदद चाहते हैं वे गुलाम बने रहेंगे।

हमीद

फिर ?

शहाबुद्दीन

जिनमें साहस हो, हिम्मत हो, वे जल जायँ, मिट जायँ, पर जिन अंग्रेजों को हम मुल्क से भगाना चाहते हैं उनकी फौजों को लोग हरगिज न बुलायँ।

याकब

ये तो सब नई निराली बातें हैं ?

शहाबुद्दीन

उसके कुछ साथियों ने मरते दम तक यहीं बने रहने का निश्चय किया है। उनमें कुछ लड़कियाँ भी हैं।

याकूब

लड़कियाँ ?

शहाबुद्दीन

वे गाती हैं, 'सबको सन्मति दे भगवान्', वे खुशी से मरने की बात कहती हैं, मारकर मरने की नहीं।

हमीद

क्या उसे मरने का डर ही नहीं है, क्या वह घड़ल्ले से बोलता है ? खब हट्टा-कट्टा ह ?

शहाबुद्दीन

बिलकुल मुट्ठी-भर हड्डियों का ढाँचा, बूढ़ा और दब्बू आदमी। वह अटक-अटककर बोलता है। पर वह अद्भुत है, उसकी आवाज अन्तर्भेदिनी है। उसमें एक ऐसी ममता भरी रहती है, कि सुनकर आदमी कायल हो जाता है। उसकी आवाज जितनी कोमल है, उतनी ही डरावनी है, वह जितनी तीखी है, उतनी ही मुलायम है। वह जैसे अपने ही से लड़ता रहता है।

अब्दुलमजीद

मैं उसे देखना चाहता हूँ।

शहाबुद्दीन

मैंने जब सुना कि वह मेरी जमींदारी में आया है

तो मैं उसकी हिम्मत पर अवाक् रह गया। मैं उसे देखने को निकला। वह गोपेर बाग की सड़क पर चल रहा था, उस घर को अपनी आँखों से देखने जिसमें एक ही परिवार के २९ आदमी कत्ल किये जा चुके ह। सड़क के चौराहे पर पहुँचते ही मैंने देखा कि जैसे सारा ही इलाका जाग उठा है। उसके पीछे बहुत दूर तक भीड़ लपकती चल रही थी। जैसे दुनिया की दुनिया उमड़ती चली आई हो।

अब्दुलमजीद

वह क्या अभी वहाँ है ?

शहाबुद्दीन

नहीं, वह चला गया है। भीड़ का बहुत-सा भाग उसी के साथ चला गया है। पर उसके साथी इधर-उधर बिखर गए हैं। वे लोगों के घर-घर जाते और उनसे बातचीत करते हैं।

याकूब

और लोग उनकी बात सुनते हैं। उन्हें अपने पास आने देते हैं ?

शहाबुद्दीन

कुछ कहने की बात है ? एक विचित्र प्रगति; जीवन चारों ओर फैल गया है, गाँव-गाँव से स्त्री-पुरुष उसे देखने झुण्ड-के-झुण्ड आते हैं, बहुत लोग लौट जाते हैं, बहुत साथ लगे रहते हैं। कभी तो इतने इकट्ठे हो जाते हैं कि समा नहीं पाते। उसकी बातें सुनकर आदमी को लाजवाब हो जाना पड़ता है।

याकूब

घास कूड़े की भीड़।

शहाबुद्दीन

पर उसका प्रभाव शहन्शाह से भी अधिक है। गोपेरगाँव के

उस अधजले कमरे को देखकर, जिसमें ११ औरत-मर्द कत्ल किये गए थे, उसकी आँखों से ऐसे आँसू बहे जैसे बरसात में पनाला चलता है। उसी वक्त से उसने अपना खाना आधा कर दिया और वह खिजिरखिल पहुँचा तो वहाँ सड़ती लाशों और जलते घरों को देखकर उसने खाना और कम कर दिया—पीछे नन्दनपुर जाकर जब लखपतियों को चिथड़ों में, और सैंकड़ों नौजवान बेवाओं को देखा तो बोला—अब तो मेरी आँख के आँसू भी जलकर खाक हो गए।

अब्दुलमजीद

वह गया कहाँ है, मैं चाहता हूँ कि उससे मिलूँ।

शहाबुद्दीन

यह कौन मुश्किल है, सुना था, वह इधर ही आ रहा है।

याकूब

इधर ? शायद ही वह इधर आने की हिम्मत करे।

(कुछ लोग आते दीख पड़ते हैं)

शकूर

ये कौन लोग हैं ?

शहाबुद्दीन

उसी की टोली के मालूम देते हैं।

याकूब

लेकिन ये तो इधर ही चले आ रहे हैं।

शकूर

उन्होंने यहाँ आने की जुर्रत कैसे की ?

याकूब

उन्हें खदेड़ो यहाँ से।

शकूर

डरो मत, मैं उन्हें और उनके गुरु को दुरुस्त कर दूंगा।

शहाबुद्दीन

बेकार है।

याक़ब

क्यों ?

शहाबुद्दीन

मैं उससे बात कर चुका हूँ, बहस भी।

अब्दुलमजीद

अच्छा !

शहाबुद्दीन

मैंने अपनी वाग्मिता की व्यर्थता पहले कभी अनुभव नहीं की थी।

नश्तर

अच्छा, भई तुम तो बड़े वक्ता और ग्रेजुएट हो। तुममें.....।

शहाबुद्दीन

मैंने बहुत बहस की, उल्टी-सीधी भी सुनाई।

नश्तर

फिर ?

शहाबुद्दीन

उसने मेरी सारी युक्तियों का जवाब केवल एक मौन मुस्कराहट से दिया। मैंने बहुत-कुछ कहा। और जब मैंने कहा कि तुम क्यों हमारे देश में आए हो, तो उसने धीरे से कहा—अपनी हाजिरी से क्या मैंने तुम्हारे आनन्द पर विषाद डाला ?

नश्तर

खूब कहा, खूब कहा । तुमने जवाब दिया ?

शहाबुद्दीन

मैं लाजवाब हो गया । और फिर जब उसने मुस्कराकर मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा—'चलो, मुझे अपने घर ले चलो । यह फकीर आज तुम्हारा मेहमान होकर रहने आया है', तो मैं भेड़ के बच्चे की तरह उसके साथ हो लिया । वह मेरे कन्धे पर उसी तरह हाथ रखे हुए मेरे घर आया । सकीना को देखते ही वह हँसता हुआ उसकी ओर दौड़ा, उसे गोद में उठा लिया । और प्यार से उसके लाल-लाल गाल पर हाथ फेरते हुए कहा—'यह बूढ़ा महात्मा तेरे घर आया है, तू इस बूढ़े की बेटी बनेगी ?' और सकीना शर्माती हुई, चाव से उसकी उँगली पकड़कर घर के द्वार तक ले गई ।

याकूब

फिर ?

शहाबुद्दीन

मैंने देखा, वहाँ तो उसके स्वागत की सब तैयारियाँ पहले ही हो चुकी थीं ।

नश्तर

अरे ! तुमसे पूछे ही बिना ?

शहाबुद्दीन

हुस्नजहाँ बानू की हँसी आँखों में फूटी पड़ती थी । जब उसने उसे मेरे कन्धे पर सहारा दिये घर की ओर बढ़ते देखा तो वह छोटी-सी चुलबुली लड़की की तरह घर से बाहर निकल आई ।

याकूब

परदा नहीं किया ।

शहाबुद्दीन

सकीना को उसने पुकारकर कहा—"बापू को भीतर ले आओ सकीना !"

याकूब

क्या कहा—'बापू ?'

शहाबुद्दीन

और सकीना उसकी उँगली पकड़कर खींच ले चली ।

याकूब

और तुम ?

शहाबुद्दीन

मैंने कहा—भीतर चलो बापू ।

याकूब

बापू ?

शहाबुद्दीन

बापू से घर में घुसते ही खिलखिलाकर कहा—'वाह, जहाँ सकीना सी बिटिया और रानी-सी बानू हो वहाँ तो आनन्द-ही-आनन्द है ।'

याकूब

तो यों कहो तुम उसके पक्के चेले हो चुके ।

शहाबुद्दीन

फिर जब वह प्रार्थना करने लगा—तो एक अपूर्व निर्मल शान्ति वातावरण में छा गई । और उसका मृदु कामल स्वर समय और आकाश पर अपनी अखण्ड दिग्विजय-सी करता हुआ गूँज उठा । एक ध्वनि उठी, अमर, अद्भुत और चमत्कार-

पूर्ण। कोमल और उज्ज्वल, वह दैवी ध्वनि थी—भाइयो और बहिनो—जिसने वहाँ खड़े-बैठे सब छोटे-बड़ों को पाक कर दिया।

नश्तर

यह तो तुम उसके गुण-गान कर रहे हो।

शहाबुद्दीन

मेरी जिन्दगी हजार बरस कायम रहे और हर बरस के पचास हजार दिन हों तो मैं प्रतिदिन उसी का गुण-गान करता रहूँ।

नश्तर

यह तो अद्भुत है।

अब्दुलमजीद

मैं उसे देखना चाहता हूँ।

हमीद

और मै उससे दो-दो बातें करना चाहता हू।

नश्तर

मै उसकी बातें सुनना चाहता हूँ।

शहाबुद्दीन

अब तो वह आ ही रहा है। उसे देख लेना, उससे दो दो बातें भी करना, उसकी बातें भी सुनना।

नश्तर

लो, वे उसके आदमी आ गए। सुनो, सुनो, वे कुछ कह रहे हैं।

शहाबुद्दीन

वे गा रहे है।

नश्तर

सुनो-सुनो ।

(तीन-चार स्त्री-पुरुष खद्दर वेश में आते हैं)

सब स्वर मिलाकर गाते हैं

बले बले बले सबे शत वीणा वेणु रव,
भारत आवाय जगत समाय, श्रेष्ठ आसन लबे ।
धर्मे महान् होबे, कर्मे महान् होबे ।
नव दिन मणि उदिबे आबार ।

(धीरे-धीरे सब लोग खड़े होकर उनके साथ गाने लगते हैं)

चौथा अंक

[स्थान—आगाखाँ महल का एक कमरा। कस्तूर बा एक साधारण पलंग पर तकिए के सहारे बैठी हैं। लेट नहीं सकतीं, इसलिए एक छोटी-सी टेबुल पर सिर टेककर बैठी हैं।

चारों ओर डॉ० सुशीला नायर, मनु गांधी, मीरा बहन, गान्धी जी।]

बा

मिठाई और फल सब सिपाहियों को बाँट दिए ?

मनु

हाँ बा !

बा

तो यह कुरता उस रामदास को दे आ।

मनु

रामदास पर इतना पक्षपात क्यों बा ?

बा

ब्राह्मण का बेटा है, जा दे आ !

(मनु जाती है)

बा

(गांधी जी से) उस अखबार में क्या लिखा है, पढ़ा तुमने ?

गांधी जी

(हँसकर) तूने पढ़ा ?

बा

सुशीला ने सुनाया। एमरी ने बयान दिया है कि आप और जिन्ना एक दूसरे से मिलना तक कबूल नहीं करते।

गांधी जी

मैंने पढ़ा।

बा

यह तो बिलकुल झूठ है। आप तो उनसे मिलने उनके घर गये थे—महादेव ने यह सब लिख रखा है। एमरी जरा मेरे सामने आवे तो। देखो भला, ये लोग कितना झूठ बोलते हैं।

गांधी जी

यह तो उनकी राजनीति है बा!

बा

लेकिन आप क्यों मुसलमानों की इतनी रियायत करते हैं, आपको तो समदर्शी होना चाहिए।

गांधी जी

चाहिए तो बा, लेकिन मुसलमानों के मन मे हिन्दुओं के प्रति जो अविश्वास पैदा हो गया है, उसे दूर करने के लिए मुसलमानों के साथ खास उदारता की जरूरत है।

बा

इतिहास की किताबों में तो मुसलमानी हुकूमत के जमाने में बड़े-बड़े जुल्म हुए, ऐसा लिखा है। लेकिन खान अब्दुलगफ्फार खां, खान साहब, मौलाना आजाद ये सब तो हमारे वल्लभभाई और देवदास-जैसे ही प्यारे हैं, ये भी तो सब मुसलमान हैं।

गांधी जी

कुछ बातें समय के प्रभाव से होती हैं बा, अब इस बार इस जेल से बाहर जाकर तू मुसलमानों के लिए कुछ करना।

बा

मेरा क्या ठिकाना, अभी हूं, शाम तक न रहूँ।

गांधी जी

ऐसा क्यों ? यों तो सभी पर यह बात लाग है। महादेव का ऐसा ही हुआ न ?

बा

महादेव तो देश की सेवा में बलि चढ़ गया। पर ब्राह्मण का मत्यु भारी अपशकुन है ।

गांधी जी

हाँ, सरकार के लिए ।

बा

पर यह ब्राह्मण की मौत तो हमारे ही सिर रही न; आपने लड़ाई छेड़ी, महादेव जेल आया और प्राण दिये।

डॉ० सुशीला नायर

सरकार ने नाहक उन्हें पकड़ा, बापू ने लडाई कब छेड़ी ?

बा

यह सरकार बड़ी पापी है, आप इतनी बड़ी सल्तनत से लड रहे है, उसके पास साधनों का पार नही है। उनसे आप कैसे जीतेंगे ? हाय, वह मेरे महादेव को ले गए।

गांधी जी

महादेव का जाना तो शुद्ध बलिदान है, उससे आजादी की की लड़ाई को लाभ ही होगा ।

बा

मैं आपसे कहती थी कि इतनी बड़ी सल्तनत से छेड़-छाड़ मत कीजिये, मगर आपने एक न सुनी। अब उसका फल सबको

भुगतना पड़ रहा है। सरकार की ताकत का पार नहीं है, वह लोगों को कुचल रही है। आखिर लोग कहाँ तक सहेंगे ?

गांधी जी

तो तू क्या चाहती है, चल, तू और मैं सरकार से माफी माँग लें।

बा

(चिढ़कर) मैं माफी क्यों माँगू ?

गांधी जी

तो तू कहे तो मैं वायसराय को माफी के लिए पत्र लिख दूँ ?

बा

(गुस्से से) कमसिन लडकियाँ जेलों में पड़ी हैं, वे माफी नहीं माँगतीं। और आप माँगेंगे ? अब किया है तो उसका फल भुगतिये। आपके साथ हम भी भुगतेंगे। महादेव जेल में खत्म हो गया है अब मेरी बारी है।

(गांधी जी चुप बैठे रहते हैं)

बा

मैं कहती हूँ कि आप अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से जाने को क्यों कहते हैं, भले ही वे यहाँ रहें। हमारा देश बहुत बड़ा है। उसमें हम सब समा सकते हैं। आप उनसे कहिये, वे हमारे भाई बनकर रहें।

गांधी जी

तो मैं और कहता क्या हूँ। यही तो मैं कहता हूँ कि आप अपनी सरदारी हटा लें तो हमारे साथ आपका कोई झगड़ा नहीं है।

बा

हाँ यह ठीक है। हम उन्हें अपना सरदार बनाकर नहीं रख सकते, भाई बनकर खुशी से रहें

सुशीला

। बापू, अब आपका टहलने का समय है, जाकर टहल आइए, प बा की मालिश करूँगी ।

गांधीजी

बा कहे तो जाऊं ।

बा

जाइए न ।

(गांधी जी जाते हैं)

बा

सुशीला, ये लोग बड़े बदमाश हैं। बापू कहते हं हमारे देश में भाई बनकर रहो, लेकिन उन्हें तो हमारी सरदारी करनी है। हमें लूटना है। इसीलिए उन्होंने हमें पकड़कर जेल में बन्द कर दिया है। (कुछ याद करके) सुशीला, आज शाम को महादेव की समाधि पर घी का दिया रखना भूलना नहीं।

सुशीला

(मालिश करते हुए) अच्छा बा !

(मनु एक बकरी के बच्चे को लेकर आती है)

मनु

बा, देखो कैसा प्यारा बच्चा है ?

बा

(गोद में लेकर) भाई रे, तू हर रोज मेरे साथ खेलने आना ।

मनु

बा, उसने तुम्हारे कपड़े खराब कर दिए ।

बा

(प्यार से) तो क्या हुआ, बच्चा ही तो है ।

(डाक्टर गिल्डर आते हैं)

डा० गिल्डर

बा, अब आप कैसी हैं ?

बा

अच्छी हूँ, आप मीरा के साथ कैरम खेलेंगे ? लेकिन कहे देती हूँ शैतानी न करने पायँगे, मैं देखती रहूँगी ।

गिल्डर

बा, मीरा बहन तो कैरम मे बहुत होशियार हैं, हमेशा वही तो जीतती हैं ।

बा

(खुश होकर) लाओ तो, कैरमबोर्ड, मीरा, देखना रानी तू ही जीतना ।

गिल्डर

अच्छा बा, देखूंगा, कौन रानी जीतती है । मगर अभी जरा आपको देख तो लूँ, सुशीला, कैसी है (संकेत से पूछते हैं)

सुशीला

(नेत्रों मं निराशा भरकर) वैसा ही (धीरे से) न्यूमोनिया के लक्षण बढ़ते जा रहे हैं ।

बा

मैं अच्छी हूँ, बस देखने-भालने की क्या बात है, लेकिन खाँसी (खाँसते-खाँसते हाँफने लगती है)

गिल्डर

(सुशीला के कान में) क्या पैन्सलीन मँगाई है ?

सुशीला

हाँ, वह एक स्पेशल हवाई जहाज से कलकत्ते से आ रही है ।

बा

सुशीला, तूने माता जी को और मोहनलाल को पत्र लिखा ?

सुशीला

बा, मैं सरकार को एक बार लिख चुकी हूँ कि पत्र नही लिखूँगी, अब मै कैसे लिखूँ ?

बा

तुझे माँ के पास जाना चाहिए ।

(मीरा बहन एक कागज लेकर आती है)

मीरा

बा, यह लो, मध्यप्रान्त की सरकार ने सब नजरबन्द स्त्री कैदियों को छोड़ दिया है, मनु मध्यप्रान्त सरकार की कैदी है, सो हुक्म आया है कि वह चाहे तो छूट सकती है ।

मनु

मैं तो छूटना नही च हती, मै तो बा की सेवा के लिए आई हूँ, सेवा अधूरी छोड़कर कसे छूट सकती हूँ ?

बा

(खुश होकर) तो देवदास को एक पत्र लिख दे, उसमे यह बात भी लिख ।

डॉ० गिल्डर

(थर्मामीटर लगाकर और परीक्षा करके) बा, अब आप आराम करें, नहीं तो बुखार और तेज हो जायगा ।

बा

मगर यह तो मेरे चर्खा चलाने का वक्त है ।

गिल्डर

नहीं, नहीं, आप थक जायँगी ।

बा

चर्खे में कौन मेहनत होती है, सुशीला, मुझे सहारा दे। (खाँसी वेग मे उठती है, खाँसते-खाँसते बेहोश हो जाती है)

गिल्डर

(घबराकर) क्या आक्सिजन गैस मँगा ली है ?

सुशीला

हाँ, लेकिन पैन्सलीन आने में देर हो रही है ।

(बा आँखें खोलती है)

बा

मनु, वह नीले रेशमी किनारे की साड़ी ला

(मनु साड़ी लाती है)

बा

(सुशीला से) सुशीला, इसे तू पहनना, नई नहीं है बहन, एक-दो बार की मेरी पहनी हुई है, यहाँ मेरे पास नई साड़ी नहीं है, यह साड़ी अमृतकौर ने अपने हाथ के कते सूत की बुनवाकर मुझे दी थी ।

सुशीला

(साड़ी लेकर आँखों में आँसू भरकर) बा, नई की तो आवश्यकता नहीं है, आपके पहनने से इसकी कीमत घटी नहीं, बढ़ी है । लेकिन, अभी इसे आप रखिए, बाहर चलने पर दीजिए ।

बा

अब मैं बाहर नहीं जाऊँगी बहन, मनु, वह साड़ी मिली, जो बापू के हाथ से कते सूत की है ।

मनु

मिल गई बा, आपकी आलमारी में है ।

बा

संभालकर रखना, कहीं खो न जाय, मेरे मरने पर मुझे इसी साड़ी में जलाना ।

मनु

(रोकर) बा, ऐसी बात क्यों करती हो ?

बा

रो मत मनु, बा महादेव के पास जायगी । हाँ, गिल्डर का नाश्ता हुआ ?

मनु

हाँ, बा !

बा

क्या बनाया

मनु

पूरणपोली ।

बा

आज तो मैं भी खाऊँगी, बापू से जाकर पूछ—वे खायँगे ?

(मनु जाती है)

गिल्डर

(भयभीत होकर धीरे से सुशीला से) क्या बा, हज्म कर सकेंगी ?

सुशीला

नहीं, मगर उनकी जिद भी भारी है ।

(मनु आती है)

मनु

बा, बापू ने कहा है, कि यदि बा न खाय तो मैं खाऊँगा ।
(सुशीला और गिल्डर प्रसन्न दृष्टि से बा की ओर देखते हैं)

बा

तो मैं नही खाऊँगी । अच्छा, सब कोई यही मेरे सामने खाय ।

मनु

लेकिन बापू तो वाइसराय को एक पत्र लिखने में व्यस्त हैं, आ न सकेंगे ।

बा

अच्छा उन्हें वहीं भेज दो ।

(सब कोई नाश्ता करने हैं, बा कुर्सी पर सिर टेके सो जाती है)

मनु

बा, हरिलाल भाई आए हैं ।

बा

(प्रसन्न होकर) कहाँ है हरिलाल ?

(हरिलाल आकर चरणों में सिर टेकते है । बढ़ी हुई दाढ़ी, फटी हुई कमीज । टूटे हुए दाँत, पैरों मे पुराना गन्दा जूता)

बा

हरिलाल, भाई, अब तू यही रहेगा न ?

हरिलाल

बा, मुझे सिर्फ एक बार आने की इजाजत मिली है ।

बा

(गुस्से से) यह क्या बात है, देवदास को तो रोज आने देते है, और हरिलाल एक ही बार आ सकता है, कहाँ है भंडारी, मेरे सामने आए । मै उनसे कहूँ तो कि दो भाइयों में भी क्यों फर्क करते हो ? यह बेचारा गरीब है तो क्या माँ से भी नहीं मिल सकता ?

सुशीला

बा, बापू से कहती हूँ, वे इजाजत मँगवा लेंगे ।

बा

जा अभी कह, और रामदास को भी बुलवा ।

(थककर हाँफते हाँफते कुर्सी पर सिर टेकती है)

मनु

(सुशीला से संकेत पाकर) बा, बापू के पास मैं जाती हूँ ।

गिल्डर

(सुशीला से एक ओर ले जाकर) खतरा नजदीक आ रहा है, क्या पेशाब नहीं हुआ ?

सुशीला

कल दोपहर में आधा सी० सी० सेलिर्गेन का इंजेक्शन था, इस आजमाइशी खुराक से शाम को करीब ५ औंस पेशाब उतरा, यह पेशाब तीन-चार दिन बाद उतरा था। मगर आज पूरी मात्रा में 'सेलिर्गेन' देने पर भी कोई असर नहीं है।

गिल्डर

दोनों फेफड़ों में न्यूमोनिया के चिह्न हैं, इससे खून का दबाव और भी गिर गया है, ऐसी हालत में गुर्दे भला क्या काम करेंगे (बेचैनी से टहलता है, रुककर उतावली से) पैन्सलीन आने में बहुत देर हो रही है।

(बापू आते हैं, चेहरे पर गम्भीरता है)

गिल्डर

बापू, आप गम्भीर नज़र आते हैं ?

गांधी जी

मैं बा की बात सोचता हूँ। इस बार सरकार ने जो मुझे और सब लोगों को बिना कारण पकड़ा है उसका उसके मन पर भारी बोझ है। बा के पास लड़के रिश्तेदार समय-समय पर मिलने आते हैं तो वह खुश रहती है। अब हुक्म आया है कि मुलाकात के वक्त बा के पास सिवा मेरे और कोई न रहे। यह मृत्यु-शैया पर पड़ी पत्नी के संबंध में तरह-तरह की शर्तें लगाना क्या सरकार को शोभा देता है ? डा० दिनशा मेहता को आने की इजाजत मिली है मगर विधानचन्द्र राय को नहीं। यह भी लिखा है जब वे आयँ तो दो डाक्टरों के सिवा बा के पास कोई न रहे। यह क्या बात है यदि मुझे डाक्टर से पूछना हो कि मेरी पत्नी की दशा कैसी है तो मैं दूसरे किसी की मार्फत पुछवाऊँ ? उसे यदि पाखाने पेशाब की हाजत हो तो क्या महज इसलिए कि दिनशा मेहता वहाँ हैं नर्सें उनके पास न जा

सकेंगी? इस तरह बार-बार मुझे दुखी करने के बदले सरकार मुझको एकबारगी यहाँ से हटा दे तो अच्छा हो। फिर न मेरी पत्नी मुझसे कोई आशा रखेगी, न मुझे ही उसकी वेदना का मक साक्षी बनना पड़ेगा। इसलिए मैंने सरकार को यह खत लिख दिया है—'अपनी पत्नी के इलाज के लिए में आवश्यक प्रबन्ध न कर सकूँ, तो कृपया आप लोग मुझे किसी दूसरी जेल में ले जाय, जिससे अपनी पत्नी की वेदना का मूक साक्षी मुझे न बनना पड़े।'

बा

(एकाएक सिर उठाकर) मेरे बाल कृष्ण कहाँ हैं, यहाँ लाओ।

(मनु बाल कृष्ण की मूर्ति का सिहासन बा के सम्मुख रखती है। बा का साँस फूल रहा है)

बा

(गांधी जी से) क्या प्रार्थना नही होगी ?

गांधी जी

इसीलिए तो आया हूँ कि प्रार्थना शुरू करूँ ?

बा

करो।

(गांधी जी, बा की चारपाई पर बा को गोद में लेकर बैठते हैं, बा उनके कन्धे पर सिर टेक देती है। सब कोई राम धुन और भजन गाते हैं। 'श्री राम भजो दुख में सुख में' यह भजन गाया जाता है। बा गांधी जी के कन्धे पर पड़ी-पड़ी सो जाती हैं)

(डा० दिनशा मेहता आते हैं, वे डा० गिल्डर और सुशीला से सलाह करते हैं)

गिल्डर

बापू, बा के इलाज के सम्बन्ध में हम आपसे कुछ परामर्श किया चाहते ह ।

गांधी जी

अब बा की दवा राम नाम है। दूसरे सब इलाज छोड़ दो। शहद और पानी के सिवा दूसरी कोई खुराक मत दो। बा खुद माँगे तो बात दूसरी है। आज वह राम के शरण है। राम को जिलाना हो जिलाय, ले जाना हो ले जाय। उसे बचाना होगा, तो वह यों ही बचा लेगा, नहीं तो मैं बा को जाने दूँगा ।

(गिल्डर आँसू पोंछते हुए हट जाते हैं)

गिल्डर

(सुशीला से) न्युमोनिया के कीटाणु बड़े जहरीले होते हैं, बापू से कहो, वे जरा सावधान रहें। उन्हें बा के पास कम ही बैठना चाहिए ।

सुशीला

बापू से यह कहना आसान नहीं है ।

(एकाएक बा को खाँसी उठती है। गांधी जी रूमाल से उनका मुँह साफ करते हैं। एकाएक बा होश में आती है)

बा

(गांधी जी से) आप यहीं बैठे हैं। घूमने नहीं गए ?

गांधी जी

(हँसकर) तू कहे तो चला जाऊँ ?

बा

(हँसकर) जाओ, घूम आओ। मनु, मुझे एक कप चाय दे।

मनु

लाती हूँ, बा !

(जाती है, बापू जाते हैं)

(देवदास भाई और संतोष बहन आती हैं, दोनों बा के चरण गोद में रखकर बैठ जाते हैं)

बा

(रोकर) हरिलाल को तो तू जानता है देवदास, मनु को तू ही सँभालना। बापू तो संत हैं, उन्हें तो संसार की चिन्ता है। परिवार को तू ही देखना। संतोष, तू तो रात में यहीं रहेगी?

संतोष

(आँसू पोंछकर) नहीं बा, हुक्म नहीं है।

(बा की आँखें नशे में झूम रही हैं, देवदास उन्हें गोद में लिटाकर सिर दबाते हैं। बा कुछ अस्पष्ट उच्चारण करती है)

गिल्डर

यह तो यूरेमिया के लक्षण हैं।

(सुशीला-गिल्डर-दिनशा सलाह करते हैं)

(देवदास आते हैं)

गिल्डर

क्या सरकार इस हालत में भी बा को नहीं छोड़ना चाहती ?

देवदास

नहीं, वे कहते हैं कि यदि हम बा को छोड़ देते हैं और बाहर आने पर उनकी हालत गम्भीर हो जाती है तो लोग गांधी जी को छोड़ने की माँग करेंगे, और यदि उन्हें हम न छोड़ेंगे तो लोग हमें राक्षस कहेंगे।

(कर्नल शाह और जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट कर्नल भण्डारी लपकते हुए आते हैं)

भण्डारी

यह पैन्सलीन आ गई, झटपट बा को पैन्सलीन दीजिए ।

गिल्डर

लेकिन बापू ने तो सब दवा ही बन्द करवा रखी हैं, बा की इच्छा भी दवा लेने की नहीं है ।

देवदास

किन्तु पैन्सलीन तो अवश्य देनी चाहिए ।

दिनशा मेहता

मैं एक बड़े डाक्टर से कन्सल्ट करना चाहता हूँ, शीघ्र लौट आऊँगा ।

देवदास

मैं भी साथ चलता हूँ ।

(दोनों जाने लगते हैं)

बा

(होश में आकर, पुकारकर) मेहता कहाँ है, मेरी मालिश करें ।

दिनशा

(लौटकर) बा, मैं मालिश करता हूँ (पाउडर से मालिश करते हैं, सुशीला बेहोश बा को गोद में लेकर बैठ जाती है)

देवदास

(भण्डारी से) क्या मैं बा के कुछ फोटो ले सकता हूँ।

भण्डारी

बापू यदि चाहें तो मुझे उज्र नहीं ।

(देवदास फोटो लेते हैं)

गिल्डर

(दिनशा से नाड़ी देखकर) नाड़ी बहुत अनियमित है। बीच-बीच में गायब भी हो जाती ह ।

दिनशा

(धीरे से) अब दिनों की नहीं, घंटों की ही बात है ।

बा

(होश में आकर) मुझे खाट पर सीधी सुला दो ।

(बा चित लेटकर भारी-भारी साँस लेती हैं । सुशीला आक्सीजन गैस की नली नाक से लगाती है)

गिल्डर

(देवदास से) अब सब लोगों को बुला लीजिए । बापू को भी ।

(सब आते हैं । बापू आते हैं)

बापू

(हँसकर) बा, ले मैं आ गया, (बा को गोद में लेकर बैठ जाते हैं)

(देवदास तुलसी और गंगा-जल लाते हैं)

बापू

देवदास गंगा-जल लाया है ।

(बा मुँह खोलती है, "हे गंगे," कहती है, गांधी जी चम्मच से गंगा-जल देते हैं । बा आँखें बन्द करके लेटती है)

(संतोष बहन, केशुभाई और रामी बहन आती हैं। बा आँखें खोलती हैं)

बा

मुझे बैठा दो।

(गांधी जी तकियों के सहारे जरा ऊंचा उकसाते हैं)

बा

(सबको देखकर) मेरे मरने का दुःख क्या ? मेरी मौत पर तो लड्डू बटने चाहिएँ। (आँखें बन्द करके) हे प्रभु, ढोर की तरह पेट भरकर खाया है, माफ करना, अब तेरी भक्ति चाहिए, तेरा ही प्रेम।

(चेहरे पर विचित्र शान्ति छा जाती है)

कर्नल भण्डारी

(डरते-डरते आगे बढ़कर) बापू, पैन्सलीन दीजिए।

गांधी जी

डा० गिल्डर और सुशीला देना चाहें तो दें।

(डा० गिल्डर और सुशीला परस्पर नेत्र-विनिमय करके सिर नीचा कर लेते हैं)

देवदास

बापू, पैन्सलीन देने दीजिए।

गांधी जी

तू ईश्वर पर भरोसा क्यों नहीं रखता ?

बा

(चारों तरफ देखकर) बापू जी !

गांधी जी

कैसा लगता है बा ?

बा

कुछ समझ नहीं पड़ता (कुछ देर बाद) मैं अब जाती हूँ।

गांधी जी

चुपचाप पड़ी रह, और भगवान् का ध्यान कर।

(बा का सिर बापू की गोद में गिर जाता है। आँखें पथराने लगती हैं। हिचकियाँ आने लगती हैं और कण्ठ घरघराता है। मुँह खुल जाता है और प्राण-वायु निकल जाती है। गांधी जी अपना सिर बा के शरीर पर डाल देते हैं। आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलती है। देवदास बा के पैर पकड़कर जोर-जोर से 'बा-बा' पुकारते हैं। जयसुखलाल भाई गांधी जी की आँखों से चश्मा उतारते हैं। गांधी जी सावधान होकर देवदास को गोद में लेते हैं। राम-धुन शुरू होती है। गांधी जी, मनु, प्रभावती, सुशीला नायर और सब उपस्थित जन राम-धुन में मग्न हो जाते हैं)

पाँचवाँ अंक

[चौमुहानी ग्राम, शहाबुद्दीन का घर । शहाबुद्दीन और उसकी पत्नी हुस्नजहाँ बानू । समय सन्ध्या काल । छोटा-सा नज़र बाग़, एक ओर रंगीन फूलों की क्यारियाँ । दूसरी ओर चबूतरा । चबूतरे पर चौकी पड़ी है । दोनों टहलते हुए बातें कर रहे हैं ।]

शहाबुद्दीन

यह क्या बात है, तुम्हारे रंग-ढंग ही बदले हुए हैं, हँसती हो तो फीकी हँसी, और बोलती हो तो जैसे नींद में बोल रही हो ! क्या दिल कहीं और लग गया है ?

हुस्नजहाँ

यह कैसी बातें करती हो ?

शहाबुद्दीन

तो कहो, क्या बात है । वह तुम्हारी सारी चुहल कहाँ गई ?

हुस्नजहाँ

मैं कुछ सोचती हूँ ।

शहाबुद्दीन

क्या ?

हुस्नजहाँ

मैं बचपन को अपनी जिन्दगी से दूर हटाकर इन्सान बनना चाहती हूँ ।

शहाबुद्दीन

खूब, दो बच्चों की माँ बनकर भी तुम अभी तक बच्ची ही थीं ?

हुस्नजहाँ

बच्ची से भी ज्यादा नादान । मेरे विचार ठीक निकले तो मैं समझती हूँ कि मैं खुदा का काम कर सकूंगी ।

शहाबुद्दीन

वाह, यह तो तुम उसी तरह बोलती हो ।

हुस्नजहाँ

बापू की तरह न ? मुझे ऐसा लगता है बापू मेरे अन्दर हैं—। हो वहाँ बोल रहे हैं ।

शहाबुद्दीन

कैसी साफ चाँदनी है, और फूल कैसे महक रहे हैं, तुम्हें वे दिन याद हैं बानू, जब तुमने पहले-पहल अपनी हस्ती से इस घर को रोशन किया था । आज तो तुम उस दिन से भी ज्यादा सुन्दर दीख रही हो । आओ, इन थोथे विचारों को छोड़ो और प्यार की बातें करो, अपना प्यार मुझे देकर निहाल करो, वह प्यार, जो मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी नियामत ह ।

हुस्नजहाँ

इतना मोह ?

शहाबुद्दीन

मेरी सारी दौलत एक तरफ और तुम एक तरफ । प्यारी बानू, तुम इस दौलत से दुनिया की सब मनपसन्द चीजें खरीद सकती हो ।

हुस्नजहाँ

क्या आजादी भी ?

शहाबुद्दीन

आजादी कसी ? हम तुम पति-पत्नी हैं। विवाह के एकसूत्र में बँधे हैं। इसमें आजादी कैसी ? यहाँ तो प्रेम और आनन्द। जितना चाहे लो, जितना चाहे दो।

हुस्नजहाँ

अफसोस, क्या आप लोग कभी भी यह महसूस करेंग कि स्त्रियों को प्रेम और भोग-विलास से परे और भी किसी चीज की आवश्यकता है ? वे भी अपना कोई जीवन-पथ निश्चित कर सकती हैं। अपनी विचार-शक्ति को काम में ला सकती हैं।

शहाबुद्दीन

यह तुम क्या कह रही हो, क्या जान-बूझकर तुम झूठ-मूठ को ही दुखी नहीं हो रहीं ?

हुस्नजहाँ

मैं तो सिर्फ यह कहना चाहती हूँ कि भोग-विलास और धन-दौलत से भी ऊपर जीवन का एक महान् तत्त्व छिपा ह। उसका कुछ महत्त्व है।

शहाबुद्दीन

और प्रेम का तुम्हारी दृष्टि में कोई मूल्य ही नहीं है ?

हुस्नजहाँ

क्यों नहीं, प्रेम का मूल्य त्याग में है।

शहाबुद्दीन

मैं यह नहीं जानता हुस्न, मैं तो इतना ही जानता हूँ कि म तुम्हें प्यार करता हूँ, हमारे ये बच्चे कितने भोले, कितने प्यारे

हैं, अपनी गहस्थी को सुखी बनाना, अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा-कर, पाल-पोसकर योग्य बनाना भी महान् काम है। और मेरे जीवन का लक्ष्य तो तुम्हारे जीवन को सुखमय और सौन्दर्यमय बनाना ही है। मेरी और मेरी हरेक चीज की तुम मालिक हो, हुस्न. तुम मेरे हृदय की रानी हो।

हुस्नजहाँ

बस, इतना ही।

शहाबुद्दीन

और क्या ? यही हमारी दुनिया है।

हुस्नजहाँ

(आँखों में आँसू भरकर) नहीं, मेरे खाविन्द, यहाँ जो शर्मनाक काम हो चुका है, वह तो है ही, वहाँ कलकत्ते में क्या हो रहा है ? हजारों पाक-अस्मत स्त्रियों की लाज लूटी जा रही है, हजारों घर लूटे और जलाये जा रहे ह, दिल्ली में कहर बरपा हो रहा है, बिहार में, पश्चिमी पंजाब में, सारे पाकिस्तान में खून का दरिया बह रहा है। गुनाहों की आँधी आ रही है। मासूम बच्चे, असहाय बूढ़े, सब मौत के घाट उतारे जा रहे हैं, गाँव-शहर भस्म हो रहे हैं, तुम तो सच्चे मुसलमान हो, कहो, वह क्या हमारी दुनिया नहीं है। यह क्या हमारी ही दुनिया में अंधेर, गुनाह, जुल्म और सितम नहीं ढाये जा रहे ? क्या तुम मुझस यह कहना चाहते हो कि हम तुम आँख मूँदकर अपने ही आराम में मस्त रहें ?

शहाबुद्दीन

तो बानू हम कर भी क्या सकते हैं ?

हुस्नजहाँ

सुना नहीं तुमने—बापू दिल्ली में उपवास कर रहे हैं, किसलिए ?

शहाबुद्दीन

तो बानू, क्या हम भी फाकानशीनी करें ?

हुस्नजहाँ

बापू जो कह गए हैं, वही करो खाविन्द ! मुसलमानों की इज्जत रख लो। पाक परवर दिगार खुश होंगे। जिन्दगी का क्या? है, है, न रही तो न रही ।

शहाबुद्दीन

प्यारी हुस्न, कोई फरिश्ता तुम्हारे भीतर बोल रहा है, कहो, हमें क्या करना होगा ।

हुस्नजहाँ

हमें अपने मुल्क के सब भाई-बहनों के साथ भाई बनकर रहना होगा । हमें अपने पिछले किये पर पछतावा करना है । भागे हुए भाइयों को वापस बुलाना, उनके मकान बनवाना, उन्हें फिर से बसाना है; नोआखाली का सारा पाप-ताप धो बहाना है ।

शहाबुद्दीन

मैं ऐसा ही करूँगा बानू, मैं अपने साथियों से भी ऐसा ही करने को कहूँगा ।

हुस्नजहाँ

मेरे आका, यह सिर्फ सवाब का ही काम नहीं है, सब मुसलमानों की इज्जत का भी सवाल है ।

(सामने से रहमत और दो-तीन मुसलमान युवक खद्दर के वेश में आते हैं, साथ में अमतुलसलाम हैं)

रहमत

(हुस्नजहाँ बानू से) बहन, सब ठीक हो गया है, हमें कल ही सुबह कूच करना है ।

शहाबुद्दीन

कहाँ ?

रहमत

आप शायद . . .

हुस्नजहाँ

(हँसकर) शकीना के अब्बा हैं ।

रहमत

(झुककर) सलाम बड़े भाई, हम श्रीरामपुर और गोपेरबाग जा रहे हैं, वहाँ जले हुए घरों को फिर से बनाने और भागे हुए भाइयों को बुलाकर बसाने का काम शुरू करना है ।

शहाबुद्दीन

मैं भी क्या आप लोगों के साथ चल सकता हूँ ?

रहमत

वाह, क्यों नहीं ।

शहाबुद्दीन

तो बानू, हमें क्या करना होगा ।

हुस्नजहाँ

जो लोग आये हैं, उनमें कुछ घायल और रोगी भी हैं ।

रहमत

बहुत हैं, कुछ हैजे के भी रोगी हैं । उनकी हालत बहुत खराब है, उनके घाव सड़ गए हैं, कपड़े चिथड़े हो गए हैं। सूखकर वे हड्डियों का ढाँचा रह गए हैं ।

शहाबुद्दीन

(घबराकर) हैजे के ?

हुस्नजहाँ

तो हमें कुछ कम्बलों की तुरन्त आवश्यकता पड़ेगी और अरारोट । लेकिन दवा ?

अमतुलसलाम

दवा और मरहम-पट्टी का सामान लेकर हमने कुछ आदमी भेज दिए हैं । (रहमत की ओर देखकर) लेकिन बहन, रहमत भाई ने अभी कुछ नहीं खाया है । कुछ इन्तजाम करना होगा ।

हुस्नजहाँ

(लज्जित-सी होकर) मुझे पहले ही पूछना चाहिए था आप सब लोग शायद भूखे हैं, दिन-भर कुछ नहीं खाया पिया ।

रहमत

वक्त ही कहाँ मिला बहन, बहुत सा बाँस और फूँस इकट्ठा करते-करते शाम हो गई । फिर चिट्ठियाँ भी तो लिखनी थीं ।

हुस्नजहाँ

तो चाय और बिस्कुट अभी लाती हूँ । खाना एक घंटे में तैयार हो जायगा । (पुकारकर) बेटी सकीना ?

(सकीना आती है)

हुस्नजहाँ

बेटी, जरा केटली में चाय का पानी रख, मैं भी आती हूँ, (मुड़कर) शायद हमें कुछ साड़ियों की भी जरूरत पड़े ।

रहमत

पड़ेगी ही । मगर हम इस वक्त खरीद नहीं सकते ।

हुस्नजहाँ

तो गाँव में घूम-घूमकर घरों से माँग लें । कुछ तो इकट्ठी हो ही जायँगी । तब तक खाना तैयार हो जायगा ।

अमतुलसलाम

यह ठीक है, चाय पीकर । हाँ कुछ कमीजें, मोमबत्तियाँ, साबुन, सुई डोरा भी चाहिए ।

(नसीबन बीबी आती है)

हुस्नजहाँ

(लिपटकर) कैसी हो सखी ?

नसीबन

मारे काम के परेशान: उनका काम, बच्चों का काम, घर का काम, बस नाक में दम है। हाँ, कैसे बुलाया था ?

हुस्नजहाँ

नश्तर भाई को हम साथ ले जा रहे हैं, तुम भी चलो बहन !

नसीबन

उनका जाना नहीं होगा । और मुझे तो देखती हो फुर्सत कहाँ है, फिर इन बातों में मेरी रुचि भी नहीं है ।

हुस्नजहाँ

यह तो अपना फज है ।

नसीबन

लेकिन यह फर्ज है क्या बला ? तुम लोग इस्लाम के खिलाफ चल रहे हो ।

हुस्नजहाँ

बहन, हम इस्लाम की इज्जत के नाम पर तुमसे अपील करते हैं। नश्तर भाई ने कहा था—कि यदि तुम्हें राजी कर लिया जाय तो वे राजी हैं ।

नसीबन

मैं क्यों राजी होने लगी ? यह तो उसी लँगोटी वाले बाबा की बातें हैं ।

हुस्नजहाँ

बहन, बापू को ऐसा न कहो । वे तो सभी को प्यार करते हैं । वे चाहते हैं सब मिलकर रहें, भाई-भाई की तरह ।

नसीबन

तो इन झमेलों में हम औरतों का क्या काम है ?

हुस्नजहाँ

क्यों नहीं है, औरत मर्द की गुलाम नहीं है, नैतिक शक्ति औरत में मर्द से अधिक है । बापू का कहना है जब तक स्त्रियों में असाधारण चरित्र का विकास न होगा, बहनें आगे न बढ़ेंगी, स्त्रियों का उद्धार नहीं होगा ।

(बहुत से आदमी घबराये हुए आते हैं)

सब

(चिल्लाकर) मार डाला, उन्हें मार डाला ।

हुस्नजहाँ

किनको, किनको ।

एक बालक

(रोता हुआ) बापू को बानू ! बापू को गोली मार दी है ।

रहमत

कौन कहता है ?

एक पुरुष

अभी रेडियो पर सुना है, दिल्ली में किसी ने उन्हें गोली मार दी ।

हुस्नजहाँ

(बैठकर) आह, किसने यह जुल्म ढाया, उन पर कैसे किसी के हाथ उठे।

(और भी बहुत आदमी चारों तरफ से चिल्लाते और शोर मचाते आते हैं)

अमतुलसलाम

(आगे बढ़कर) भाइयो, शोर न करो, सब कोई बैठ जाय और प्रार्थना करे।

(सब बैठ जाते हैं। अमतुल और रहमत सस्वर कुरान की कुछ आयतें पढ़ते हैं)

छठा अंक

[स्थान—अणु बम से ध्वस्त एक नगर। सारे महल-अट्टालिकाएँ-जनवीथी-मार्ग ढहे पड़े हैं। मलबों के नीचे लाशें सड़ रही हैं। बहुत से अर्ध मृत कराह रहे हैं। कुछ अपंग आहत इधर-उधर घिसट रहे हैं, दुर्गन्ध और अशुभ वातावरण से दिशाएँ ओत-प्रोत हैं। आकाश में बम-वर्षक वायुयान चील की भाँति झपट्टा मार रहे हैं। दूर तोपों की गर्जना सुनाई पड़ रही है। हिंसा, पूंजी और राजनीति आती हैं। हिंसा का रक्त वर्ण चुस्त सैनिक परिधान है, सिर पर लोहे का टोप, हाथ में मशीनगन, गले में कारतूसों की पेटी, भारी बूट, आँख पर काला चश्मा। राजनीति का चुस्त रंग-बिरंगा परिधान, खूब मोटा भारी शरीर। हाथ में एक फाइल और पतली लपलपाती बेंत। मुंह में मोटा सिगार, पूंजी का बहुत मोटा भारी पेट।

समय—दोपहर।

दोनों लाशों और घायलों को कुचलते हुए चल रहे हैं।

नागरिकता और सभ्यता दोनों क्षीणकाय स्त्री-वेश में घायलों के बीच में मलबे में दबी पड़ी हैं।]

नागरिकता

(हिंसा, पूंजी और राजनीति को देखकर) सखि, राक्षसियाँ-राक्षसियाँ।

सभ्यता

कहाँ ? कहाँ ?

नागरिकता

वह देखो, वे इधर ही को आ रही हैं। हाय, अब क्या होगा ? वह मोटी तो हमें समूचा ही निगल जायगी ।

सभ्यता

क्या ये नर-भक्षण करती हैं ?

नागरिकता

नहीं तो क्या ? देखती नहीं हो उनकी लपलपाती लाल-लाल जीभ ?

सभ्यता

पर ये राक्षसियाँ तो नहीं दीख पड़ती, इनके बड़े-बड़े दाँत कहाँ हैं ?

नागरिकता

तो फिर कौन हैं ?

सभ्यता

पिशाचिनी-सी दीख पड़ती है ।

नागरिकता

तो दोपहर दिन के प्रकाश में ये कैसे घूम रही हैं ?

सभ्यता

अरे, कहीं ये नरक के यमदूत तो नही, हम मरों और अधमरों के प्राण संचित करते फिर रहे। (पीछे मुँह फेरकर) अरे, यह कौन आ रही है ?

(अहिंसा आती है। दुबली-पतली तेजवती स्त्री, सफेद खादी की साड़ी से शरीर ढका हुआ, सिर पर सफेद खादी का टुकड़ा बँधा, एक हाथ में फूलों का ढेर दूसरे में एक मोटी पुस्तक, जिस पर 'अहिंसा' लिखा है । शान्त मुद्रा)

अहिंसा

बहनो, ये न राक्षसियाँ हैं, न पिशाचिनी, न यमदूतिका; इनमें वह एक जिसके सिर पर लोहे का टोप है, हिंसा है, और दूसरी वह मोटी राजनीति है। तीसरी पूँजी। परन्तु इनमें राक्षस, पिशाच और यमदूत तीनों का रक्त मिश्रित है।

सभ्यता

ये कौन हैं बहन, क्या ये हमें भक्षण करने आई हैं? हाय, हाय अब इनसे हमारी रक्षा कौन करेगा?

अहिंसा

भय मत करो बहनो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी।

नागरिकता

तुम कौन हो बहन?

अहिंसा

मैं अहिंसा हूँ।

सभ्यता

तो दयामयि, हम तुम्हारी शरण हैं।

(हिंसा, पूँजी और राजनीति आगे बढ़ती हैं)

राजनीति

अब तक तो सब ठीक है न?

हिंसा

(हँसकर) सब, एकदम ठीक है।

राजनीति

अच्छा कहो, तुमने क्या-क्या किया?

हिंसा

यह पूछो क्या नहीं किया। मैंने देखा विश्व का सौभाग्य यौवन से भरपूर था, बिजली का तेज और वायु की गति लिये, प्रकृति-वेश्या हाथ में रक्त, मद्य और नयनों में हलाहल कटाक्ष लिये अन्धाधुन्ध ढाल रही थी। ज्ञान और विज्ञान उसके मुसाहिब थे। विश्व-विभूति का नग्न नृत्य कर रही थी। और नर-लोक उस अकाण्ड ताण्डव पर मुग्ध था। मूर्ख न्याय ताल दे रहा था और निर्लज्ज नीति अट्टहास कर रही थी। रूढ़ि सभापति के उच्चासन पर आसीन थी। पाखण्ड के हाथ प्रबन्ध था और पाप स्वागत कर रहा था। असत्य के अन्ध दीप जल रहे थे और सत्ता का महदालोक अप्रतिभ चमक रहा था। वहाँ, मानव-उत्कर्ष का स्वच्छन्द उपहास हो रहा था।

राजनीति

यही तो सुअवसर था जो तुम्हारे अनुकूल था।

हिंसा

और मैंने उससे पूरा लाभ उठाया।

राजनीति

तुमने क्या किया ?

हिंसा

मुझे कुछ भी नहीं करना पड़ा। सब-कुछ आप ही हो गया। प्रतिहिंसा वहाँ पहले ही अपना अधिकार जमा चुकी थी। बस एक संकेत ही में विश्व-ध्वंसिनी ज्वालाएँ अदम्य वेग से धधक उठीं।

पूंजी

खूब हुआ। जीवन से मोह रखने वाले सब कट मरे, अब मेरा प्रभुत्व विश्व पर स्थापित हो गया।

राजनीति

वह मेरी ही सहायता से बहन, यह न भूलना ।

पूंजी

नहीं, भूलूंगी कैसे ? हम सबका एक ही स्वार्थ है, एक ही ध्रुव ध्येय है, हम एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं, (किसी चीज में ठोकर लगने से चौंककर) आह, यह क्या है, मेरी राह में किसने इसे विघ्न करने डाला है ।

नागरिकता

मैं नागरिकता हूँ बहन, मुझे इस दुःख से उभारो, मैं दब-कर मर रही हूँ ।

राजनीति

क्या तुमने हमारे विरुद्ध सिर नहीं उठाया ? अब भोगो अपनी करनी का फल ।

सभ्यता

परन्तु क्या हमने जन-कल्याण के विरुद्ध कुछ किया ?

राजनीति

मूर्ख, जन-कल्याण क्या होता है, हम तो आत्म-कल्याण को जानती हैं । (पूंजी से) क्यों बहन ?

पूंजी

बिलकुल ठीक, क्या जन-जन समान हो सकते हैं ?

राजनीति

नहीं, नहीं ।

पूंजी

तो जिस-जिसने हमारे अनुग्रह का विरोध किया उसका दलन किया जायगा ।

हिंसा

उसे कुचलकर सदा को समाप्त कर दिया जायगा।

पूँजी

और तब विश्व पर मेरा प्रभुत्व होगा।

राजनीति

और बहन, मैं तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करूँगी।

पूँजी

तू मेरी छोटी बहन है।

हिंसा

और मैं? सब विरोधी सत्ताओं को तो मैं ही उखाड़ फेंकूँगी।

पूँजी

सखी, तेरा उपकार क्या मैं भूलूँगी ? परन्तु यह सभ्यता और नागरिकता !

राजनीति

राह के रोड़े।

पूँजी

इन्हें दूर करो, सदा के लिए।

हिंसा

अभी लो (मशीनगन सीधी करती है)

नागरिकता

बचाओ, बचाओ।

सभ्यता

रक्षा करो, रक्षा करो।

(अहिंसा आगे बढ़ती है)

अहिंसा

(सामने आकर) ऐसा नहीं होना चाहिए। उन्हें मत मारो।

हिंसा

तुम कौन हो ?

अहिंसा

मैं अहिंसा हूँ।

हिंसा

कौन अहिंसा ?

अहिंसा

प्रेम की पराकाष्ठा, प्राणी-मात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव मेरा ध्रुव ध्येय है।

हिंसा

तू क्या मेरी संहारक सत्ता को नही जानती ?

अहिंसा

संहार कोई मानव-धर्म नही।

हिंसा

मानव-धर्म क्या है ?

अहिंसा

दूसरे के लिए प्राणार्पण करना।

हिंसा

तो पहले मुझे तेरा ही संहार करना होगा।

अहिंसा

तब तो ससार की अतिम आशा पर ही पानी फिर जायगा। परन्तु मेरा संहार हो नहीं सकता।

हिंसा

क्यों नहीं हो सकता ?

अहिंसा

क्योंकि मानव-बुद्धि की प्रचण्ड शक्ति मे मैं ओत-प्रोत हूँ।

हिंसा

क्या तुझे मृत्यु का भय नही ?

अहिंसा

जहाँ मैं हूँ वहाँ भय कहाँ ?

हिंसा

तो पहले तू ही मर (मशीनगन साधती है। सत्य और धर्म आते हैं)

(शुद्ध श्वेत खादी का परिधान, सत्य किशोर वय का सुकुमार बालक है, धर्म सफेद दाढ़ी वाला शुभ्रकेशी, शुभ्रकेशी वृद्ध। सत्य के कन्धे पर हाथ धरे धर्म चल रहा है)

सत्य

ठहरो भाई !

राजनीति

तू कौन ?

सत्य

मैं सत्य हूँ, नित्य स्वावलम्बी हूँ, जो मन, वचन, कर्म से मुझे धारण करता है उसे मैं सदेह मुक्ति देता हूँ।

राजनीति

तुझ-जैसे छोकरे को मैं मुँह नहीं लगती, न मैं तेरी परवाह ही करती हूँ ।

सत्य

तुम्हें मैं जानता हूँ, तुम असत्य को सत्य कहकर लोगों की विश्वासभाजिनी बनती हो--विजय पाती हो--फिर यदि सत्य को सत्य कहो तो कैसा हो ? कितना लाभ हो ?

राजनीति

मूर्ख, सत्य को सत्य कहूँ, तो राजनीति ही क्या ? सत्य गोपनीयता से घृणा करता है, और गोपनीयता ही मेरा प्राण है। फिर मेरा साथ क्या ?

(धर्म आगे बढ़ता है)

धर्म

परन्तु बहन, सत्य ही धर्म की सच्ची प्रतिष्ठा है, सृष्टि में एक-मात्र सत्य ही की सत्ता है दूसरे की नहीं

पूँजी

सृष्टि में मेरी सत्ता है, और रहेगी ।

धर्म

नहीं रहेगी बहन, क्योंकि तुमने मुझ सेवक को त्याग दिया, प्रियदर्शी सत्य को त्याग दिया। समाज को तो मेरा ही आसरा सदा से रहा है और मैं सदा सत्य के सहारे चलता रहा हूँ ।

पूँजी

विगत युग में तून मूर्खों को भरमाया होगा। पर आगे आने वाले युग में मेरा और मेरी इन दोनों सखियों का ही बोल-बाला रहेगा ।

धर्म

नहीं बहनो, आगे आने वाला जन-मत सबसे अधिक धर्म के ही आसरे चलेगा ।

राजनीति

तो तेरे लिए हमने इतवार का एक दिन नियत कर दिया है उसी दिन कुछ रोटी-टुकड़ा भी मिल जायगा, चलता बन, पर तेरे इस साथी सत्य को तो कोई कानी कौड़ी को भी न पूछेगा ।

धर्म

मैं शनिश्चर और इतवार की छुट्टी के दिनों में फुर्सत में ढोंग दिखाने से नहीं, जिंदगी की प्रत्येक श्वास में रमने से दुनिया का भला करूँगा ।

राजनीति

अरी बहन, इन राह के रोड़ों को दूर कर, विवाद से क्या ?

अहिंसा

मेरे रहते नहीं ।

हिंसा

तो पहले तू ही मर ।

सत्य

किन्तु मैं इसका रक्षक हूँ ।

धर्म

और मैं भी ।

हिंसा

क्या तुम हमारे मुकाबले में लड़ोगे ?

सत्य

क्यों नहीं ?

धर्म

अवश्य लड़ेंगे ।

राजनीति

(जोर से हँसकर) तुमने क्या हमारे हथियार देखे है, भूलोक और आकाश उनसे पटा पड़ा है, हम क्षण-भर में पृथ्वी को जलाकर खाक कर सकती हैं ।

धर्म

जब तक पृथ्वी पर मैं और मेरे साथी हैं, तब तक तुम ऐसा न कर सकोगे ?

राजनीति

तुम्हारे साथी कौन ?

(सत्याग्रह और असहयोग आते हैं। दोनों तरुण बालक, श्वेत खद्दरधारी। सत्याग्रह के हाथ में एक छोटी-सी तराजू बाए में तिरंगी पताका । घुटनों तक जाँघिया, आधी बाहों की बंडी। सिर पर गांधी टोपी। हाथ में तिरंगा झंडा।)

सत्याग्रह

हम हैं ।

राजनीति

अरे वाह, तुम कौन हो और यह तुम्हारे हाथ में क्या है ?

सत्याग्रह

मेरा नाम सत्याग्रह है। मैं अहिंसा का ज्येष्ठ पुत्र हूँ, बापू मेरे पिता थे, बापू की ब्रिटिश साम्राज्यशाही के साथ लड़ी जाने वाली लड़ाई में मैंने युद्ध-संचालन किया है। मेरे सब सैनिक विरोधियों से सद्भावना रखते हैं। सत्य का आग्रह रखते हैं,आत्म-बलिदान हमारा मूल मन्त्र है। सत्य हमारा पथ-प्रदर्शक और धर्म हमारा बल है। 'करो या मरो' हमारा मूल मन्त्र है।

हिंसा

इस नटखट लड़के को मैं अच्छी तरह जानती हूँ। इसने मुझे काफी परेशान किया है, बहन, मैंने इससे तीन-तीन बार मुँह की खाई है ।

पूँजी

हिम्मन न हारो, हाँ इसके साथ वह बेतुका आदमी कौन है ?

असहयोग

मैं स्वयं अपना परिचय देता हूँ, मनुष्यों को दूसरों की गुलामी से छुटकारा दिलाना मेरा काम है। मैं अहिंसा का वंशज हूँ। स्वेच्छाचारियों की घातकी योजनाओं को व्यर्थ में ही करता हूँ। मैं बड़ी-बड़ी सत्ताधारी शक्तियों को पलक मारते खोखली कर सकता हूँ ।

राजनीति

उस खतरनाक आदमी को मैं जानता हूँ। यह तो चलती हुई मशीनरी के सब कल-पुर्जे बखेरने की शक्ति रखता है। जन-बल इसी के साथ है। इसके जादू से बेबस होकर लोग बड़ी-बड़ी नौकरियाँ छोड़ बैठते हैं, छात्र कालेज छोड़ बैठते हैं, वकील, जज, कामगर अपने-अपने काम छोड़ बैठते हैं, स्वदेशी की मार के सामने मुझे घुटने टेकने पड़े हैं। इससे दूर ही रहने में भलाई है।

पूँजी

मैंने भी इस दुश्मन की चोटें सही हैं। क्यों न इनसे समझौता कर लिया जाय ?

राजनीति

मैं कोशिश करती हूँ (आगे बढ़कर) क्या हम लोग दोस्त नहीं बन सकते ?

सत्याग्रह

क्यों नहीं, अपना हृदय बदलिये, खूनी आदतों को त्याग दीजिये, घृणा के स्थान पर प्रेम हृदय में उत्पन्न कीजिय। देखिये--यह नागरिकता और सभ्यता आपके ढाये हुए गजब के नीचे दबकर दम तोड़ रही हैं उन्हें उबारिये, अपनी मशीन-गनों के निशाने उनकी छाती पर न लगाइए ।

राजनीति

यही तो हम चाहते हैं, हम दोनों को जीवन देना चाहते हैं।

धर्म

क्या गोलियों से उनके कलेजे छेदकर ?

सत्य

या उन पर जुल्म ढाकर ?

सत्याग्रह

या उन्हीं के घरों को उनकी कब्र बनाकर ?

राजनीति

नहीं, हम उन्हें समृद्ध और क्रियाशील देखना चाहते हैं।

हिंसा

किन्तु उसका विद्रोह नहीं सह सकते, हम अपनी शक्ति जानते हैं ।

पूंजी

मेरी ही बदौलत आज उनकी ऐसी उन्नत अवस्था हुई है।

सत्य

जिसे तुम उन्नत अवस्था कहती हो--वह वास्तव में मौत के पंजे में जिन्दगी की कराह है। इस कराह को तुम गोली,

गोले और बम से बन्द किया चाहती हो ? ये अनन्त खण्डहर, ये अपंग, घायल, ये भूखे-नंगे अंग-भंग, अनाथ ये बे-घर-बार ये पुरुष, ये उठी उम्र के नौजवानों की सड़ती हुई लाशें सब क्या हैं ? किसकी बदौलत हैं, क्या आप ही की कारस्तानी नहीं ।

राजनीति

इसमें मेरा क्या दोष है ?

धर्म

आप असत्य को सत्य कहती हैं, सत्य से घृणा करती हैं ।

पूंजी

और मैं ?

धर्म

आप अधिकार को आगे बढ़ाती हैं, कर्तव्य को मानती नहीं । समानता और जन-हित की विरोधिनी हैं । जो सबसे बड़ा मानवीय सिद्धान्त है ।

हिंसा

मेरे विषय में आपके क्या विचार हैं, मैं भी सुनूं ।

अहिंसा

बहन, सच पूछो तो आपकी मानव-समाज को आवश्यकता नहीं है । आप ही ने मनुष्यों को परस्पर खून का प्यासा पशु बनाया है ।

राजनीति

लेकिन हम सब नागरिकता और सभ्यता को जीवन देना चाहते हैं, हम सब इस बात पर सहमत हैं ।

अहिंसा

यही सही । तो आइए, इन्हें उबारिये, उठाइए, इन्हें समानता और श्रेष्ठता प्रदान कीजिए ।

राजनीति

किन्तु यह हमारे अकेले के बूते का काम नहीं, हमें सहायक चाहिए ।

(खद्दर आता है । हाथ का कता-बुना कुरता, धोती, टोपी पहने । युवक, हाथ में खद्दर का झोला दूसरे में तकली)

खद्दर

मैं सहायता करूँगा । ग्रामोद्योग और घरेलू धन्धों का पुनरुज्जीवन मेरा ध्रुव ध्येय है और सरल सादा जीवन मेरा व्रत है ।

पूँजी

किन्तु तुम तो मुझे चौपट करने पर तुले हुए हो. तुमसे हमारा मेल नहीं हो सकता ।

खद्दर

क्यों नहीं हो सकता ? मैं अहिंसा का पुत्र हूँ, और जनता का नाती । तुमने मनुष्य को मनुष्य पर उसी भाँति लाद रखा है जैसे गोदाम में माल से भरे बोरे एक-पर-एक लदे रहते हैं । सब समान होने पर भी एक-पर-एक लदा है, मैं इसी का विरोधी हूँ । मैं चाहता हूँ कि मनुष्य स्वच्छन्द हो, सुखी हो, स्वावलम्बी हो, समान हो ।

धर्म

यही ठीक है, मानवता, नागरिकता और सभ्यता की रक्षा इसी से होगी ।

(बहुत से हरिजन साफ नीला कुरता-पाजामा पहने सिर पर सफेद साफा बाँधे आते हैं)

हरिजन

हम भी इस नेक काम में सहायक हैं, समाज की स्वच्छता

हमारा व्रत है, राजनीति ने हमें अपनी शतरंज का मोहरा बनाया था। पर गांधी जी ने प्राणों के मूल्य पर हमें बचा लिया। हम समाज के समर्थ अङ्ग हैं। नागरिकता और सभ्यता हमारे ही सहारे अपने पैरों पर खड़ी हो सकती हैं। त्याग, तप और सेवा हमारी परम्परा है।

(श्वेत शेरवानी, पाजामा पहने हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य आता है)

हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य

हमारी भी सहायता आप स्वीकार कीजिये। साम्प्रदायिकता के जल्लाद से गांधीजी ने मेरी प्राण-रक्षा की थी और मुझे सत्य और अहिंसा का मार्ग दिखाकर धर्म को सौंप दिया था। अब धर्म की आज्ञा से मैं मानवता की सेवा में आया हूँ।

राजनीति

(आगे बढ़कर और धर्म का हाथ पकड़कर) अब देर क्यों? सभ्यता और नागरिकता को उभारकर खड़ा किया जाय।

पूंजी

मैं तुम्हारे साथ हूं।

हिंसा

लेकिन मैं तो कहीं की न रही। जीवन-भर राजनीति और पूंजी की सेवा की अब मेरी सेवाएँ किस काम आयेंगी?

धर्म

बहन, तुम अहिंसा की शरण लो और सत्य का अनुसरण करो।

(सब मिलकर मलवे के नीचे दबी हुई सभ्यता और नागरिकता को निकालकर खड़ा करते हैं। चारों ओर से सब जाति और सब धर्मों के स्त्री-पुरुष विविध वेश में आते हैं। और सब गाते हैं)

जग रे जग ।
अब तो जग ।

लोहे से लदा हुआ,
लोहू से भरा हुआ,
अंग अंग में घायल,
यह कहाँ चला मनु-कुल ।

डगमग–
डगमग,
भग रे भग–
मत्सर भग,
भग रे भग–

जग रे जग–
ओ रे जग
ओ जग जग,
जग रे जग ।

अभय अमर–विगत रोष ।
मत्सर तज–चल नरकुल–
अब तो पग पग–जग रे जग ।

पग पग पर–
जग मग कर,
सब अघ हर–
कस परिकर ।

जग रे जग–
आ रे जग,
ओ जग–जग
जा रे जग ।